डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों में दलित विमर्श

HIN-675 शोध प्रबंध

श्रेयांक: 16

स्नातकोत्तर कला (हिंदी)

की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोधार्थी

अक्षता गांवकर

अनुक्रमांक: 22P0140002

PR Number: 201907047

मार्गदर्शक

प्रो. वृषाली मान्द्रेकर

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य संकाय

हिंदी अध्ययन शाखा

गोवा विश्वविद्यालय

अप्रैल 2024

GOA UNIVERSITY
SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE
TALEIGAON PLATEAU

परीक्षक

Seal of the school

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Dissertation report entitled, 'डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों में दलित विमर्श' is based on the results of investigations carried out by me in the Discipline of Hindi at Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University under the Supervision of Prof. Vrushali Subhash Mandrekar and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will be not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the dissertation. I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to any one as needed.

Gaonkar

Akshata Gaonkar

22P0140002

Date: 16/04/2024

Place: Goa University

II

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation report 'डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों में दलित विमर्श' is a bonafide work carried out by Ms Akshata Govind Gaonkar under my supervision in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Master of Arts in the Discipline of Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

Prof. Vrushali Subhash Mandrekar

GOA UNIVERSITY
SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE
TALEIGAON PLATEAU

school stamp

Prof. Anuradha Wagle

Dean, SGSLL, Goa University

Date: 16/04/2024

Place: Goa University

III

अनुक्रम

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	Acknowledgements	II-III
	अनुक्रम	IV-V
	कृतज्ञता और भूमिका	VI-VIII
1	१. डॉ. सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व १.१. जन्म तथा बचपन १.२. शिक्षा १.३. कृतित्व	१-१५
2	२. दलित विमर्श – अवधारणा एवं स्वरुप २.१. स्वरुप २.२. दलित विमर्श : परिवेश एवं विभिन्न आयाम २.३. दलित विमर्श में जाति भेद २.४. दलित शब्द का अर्थ २.५. परिभाषा	१६-२९
3	३. डॉ सुशीला टाकभौरे की कहानियों का विश्लेषण	३०-६३

4	४. डॉ. सुशीला टाकभौरे की कहानी संग्रह में अभिव्यक्त दलित विमर्श ४.१. सामाजिक दलित विमर्श ४.१.१. नारी शोषण ४.१.२. जातिगत भेदभाव ४.१.३. शिक्षा विषय में संघर्ष ४.१.४. स्कूल में निम्न जाति के बच्चों में भेदभाव ४.१.५. स्कूल के क्षेत्र में जागरूकता ४.१.६. धार्मिक आडंबरो में विश्वास ४.१.७. अंधविश्वास ४.१.८. आत्मविश्वास की कमी ४.१.९. आर्थिक विपन्नता का चित्रण ४.१.१०. छुआ -छूत की समस्या ४.१.११. नई पीढ़ी में उभरते विद्रोह का चित्रण	६४-८६
5	५. भाषा शैली ५.१.भाषिक संरचन ५.२. भाषा ५.३. सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग	८७-९८

	५.४. शैली	
6	उपसंहार	९९-१०१
7	संदर्भ सूची	१०२-१०३

कृतज्ञता

डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों में दलित विमर्श यह लखु शोध प्रबंध पूरा करने में प्रो. वृषाली सुभाष मान्द्रेकर जी के सहयोग के लिए में उनकी आभारी हूँ। उन्होंने मेरा समय समय पर मार्गदर्शन किया। विषय चयन करने में मेरी सहायता की। और मुझे जिन किताबों की जरुरत थी वे किताबें उपलब्ध करवा दी। और उन्होंने आपनी किताबें भी देकर मेरी सहायता की।

हिंदी अध्ययन शाखा के निदेशक डॉ. बिपिन तिवारी ने भी मेरा मार्गदर्शन किया। हिंदी विभाग के अन्य प्राध्यापक दीपक वरक, मनीषा गावडे, ममता वेर्लेकर तथा श्वेता गोवेकर जी ने भी पूरा सहयोग किया। उन सभी के प्रति मैं मेरी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

मेरे परिवार वालों ने भी कदम – कदम पर मेरा पथ – प्रदर्शन किया उनको मैं धन्यवाद देती हूँ। और मेरे दोस्तो का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य को सफल बनने में हमेशा मेरी सहायता की है।

शणै गोंयबाब भाषा एवं साहित्य संकाय हिंदी अध्ययन शाखा की में आभारी हूँ। गोवा विश्वविद्यालय के ग्रंथलय को आभार व्यक्त करती हूँ, जिसने मुझे समय समय पर किताबों की सहायता की।

भूमिका

हिंदी कहानी साहित्य की परंपरा आधुनिक काल से आरंभ होती है। जिसमें बहुतसी कहानियाँ कहानी के तत्वों के आधार पर लिखी है। इन कहानियों का मुख्यतः उद्देश्य मनोरंजन था पर समय के चलते इस विधा में परिवर्तन आया है।

सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण कवयित्री, लेखिका एवं विचारक हैं। इनके लेखन में दलित समाज की पीड़ा, चिंता और दिशा दिखाई देती है क्योंकि पीड़ा की स्वंय भुक्तभोगी रही हैं। साहित्य में दलित समाज, दलित नारी और हाशिए पर जीवन जीने वालों का मार्मिक यथार्थ दिखाई देता है। सुशीला जी ने दलितों और महिलाओं की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है।

सुशीला जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से दलित विमर्श पर विचार किया है। इनके साहित्य में दलितों की मार्मिक स्थिति का यथार्थ चित्रण है। देश के लगभग सभी प्रान्तों के दलितों और दलित महिलाओं की स्थिति लगभग एक जैसी है।

सुशीला टाकभौरे जी के कथा साहित्य में दलित विमर्श दिखाई देता है। उन्होंने आपने कहनियों में दलितों के साथ होता शोषण, भेदभाव और उनकी जीवन में आये समस्याओं का चित्रण किया है। उनकी सभी कहनियाँ यथार्थ से जुड़ी हुई है। सुशीला जी ने आपने जीवन में जो भी भोगा,

देखा , सुना है वही उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। उनकी कहानियाँ यथार्थ से जुड़ी होने के कारण दलितों के जीवन, संघर्षों, पीड़ाओं , समस्याएँओं को महसूस कर सके।

सुशीला जी ने चार कहानी संग्रह लिखा है। 'टूटता वहम','अनुभूति के घेरे','जरा समजो' और 'संघर्ष'। इन चारों में से मैंने मेरे लखु शोध प्रबंध के लिए 'टुटता वहम' यह कहानी संग्रह लिया है। उस कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ है। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में पिछड़े दलित जाति से जुड़ी कहानियाँ है। उनके कहानियों में ज्यादातर जातिगत भेदभाव दिखाई देता।

पहला अध्याय

डॉ. सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना

आधुनिक युग के दलित साहित्यकारों में प्रमुख स्थान प्राप्त करने वाली सुशीला जी दलित समाज और नारी से सम्बंधित साहित्य लिख रही है। दलित स्त्री होने के कारण उनके साहित्य में नारी और दलित समाज की समस्याओं का अंकन अधिक मात्रा में दिखाई देता है। साथ ही नारी मन के अनेक पहलुओं को उन्होंने उजागर किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, वे दलित समाज के परिवर्तन की समर्थक हैं। दलित समाज की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए वे यथाशक्ति कार्य कर रही हैं। वे नारी स्वतंत्रता की भी समर्थक हैं तथा समाज में जातिभेद और लिंगभेद की भावना को पूर्णतः मिटाना चाहती हैं। उन्होंने दलित समाज की विडंबनाओं को अलग- अलग दृष्टि से देखा और उसे अपने साहित्य में व्यक्त किया है।

मुख्य रूप से सुशीला जी को कहानीकार और कवयित्री के रूप में जाना जाता है। उनकी सभी कहानियाँ दलित समाज और नारी से संबंधित होने के कारण उनमें विषय-साम्य दिखाई देता है। उन्होंने कभी अपने अनुभवों के आधार पर कहानियाँ लिखी, तो कभी परिवेश से उपने कथानकों को चुना है। इसी कारण उनकी सभी कहानियों में यथार्थ है, कुछ मात्रा में कल्पना भी इनमें मिलती है। इन कहानियों में पाई जानेवाली अनेकानेक विशेषताओं को देखने से पहले सुशीला जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को परखना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि किसी के जीवन, परिवेश आदि के बारे में सही जानकारी हासिल किए बिना उनके साहित्य को हम सही रूप में विश्लेषित नहीं कर पाते हैं। साहित्यकार अपने परिवेश एवं परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना

नहीं रहता है। इसी कारण सुशीला जी के समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व को देखना आवश्यक हो जाता है।

१.व्यक्तित्व

किसी भी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करने से पहले उनके व्यक्तित्व को जानना आवश्यक है। जिससे मालूम होता है कि उनके साहित्य में उनके व्यक्तित्व का कितना प्रभाव पड़ा है।

१.१ जन्म तथा बचपन

सुशीला जी का जन्म मध्यप्रदेश के जिला होशंगाबाद की तहसील में सिवनी मालवा के एक छोटा गाँव बानापुरा में ४ मार्च १९५४ को हुआ था। जन्मपत्रिका बनानेवाले एक पंडित ने उनका नाम गोदावरी और दूसरे पंडित ने रेणुका बताया था। परंतु उनके पिताजी ने उनका नाम 'सुशीला' रख दिया। घर में सभी उन्हें प्यार से 'शीला' कहते हैं। सुशीला बचपन में गुड्डा - गुड़ियों का खेल खेलती थी। सुशीलाजी के पिताजी का नाम श्री रामप्रसाद घांवरी और माताजी का नाम श्रीमती पन्नाबाई घांवरी। उनके पिताजी अपने 'पैतृक गाँव ' नेमावर के सरकारी स्कूल में सवर्ण बच्चों से अलग बैठकर दूसरी कक्षा तक पढ़े थे। लेखिका को अक्षर ज्ञान और गिनती, जोड़ने - घटाने का ज्ञान पिताजी ने ही कराया था। माताजी आशिक्षित थी। वे कभी स्कूल नहीं गई, फिर भी अपने सभी बच्चों को अच्छा शिक्षा देने की सोचती थी। नानी सभी बच्चों को लाड़ - प्यार से रखती थी। वह उनकी प्रत्येक जिद भी पूरा करती थी। सुशीला जी का बचपन अपनी

नानी के साथ बानापुरा में बीता था। सुशीलाजी के नानी प्रति दिन अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाते थे, जिन्हें सुशीलाजी बचपन से बहुत ध्यान से सुनती थी। सुशीलाजी अकसर इन कहानियों के बारे में सोचती थी। सुशीलाजी बचपन में कल्पनाशील स्वभाव की थी। सुशीला जी को चार भाई थे, दो बड़े और दो छोटे थे और दो बड़ी बहने थी। कमल और मोहन छोटे भाइयों का नाम था और रज्जो और मंझली बड़े बहनों का।

छः वर्ष की आयु से उनकी शिक्षा आरंभ हुई। स्कूल में जाने के लिए उनके मन में बहुत ही उत्सुकता, जिज्ञासा और आग्रह था। स्कूल में नाम लिखवाने के लिए और स्कूल में जाने के लिए सुशीला जी बहुत बेचैन हो जाती थी। उठते- बैठते माँ से यही कहती थी "मेरा नाम स्कूल में कब लिखवाएंगे? आज ही क्यों नहीं लिखवाते नाम ? मैं स्कूल कब जाऊँगी ?" स्कूल जाने से पहले पिताजी ने उन्हें हिंदी वर्णमाला, बारहखड़ी और गिनती का ज्ञान दिया। वे उन्हें बहुत प्यार के साथ पढ़ाते थे।

सुशीला जी वाल्मीकि समाज की है। उस समय गाँव में दलित पिछड़ी जातियों के घर सवर्ण समाज की बस्तियों से दूर, गाँव के बाहर होते थे। सुशीला जी का घर भी गाँव से अलग था। गाँव से अलग, समाज के मोहल्ले से अलग सुशीला जी का मन पढ़ाई में रमता था। उनके घर में बिजली की व्यवस्था नहीं थी। शाम होते ही घर में मिट्टी के तेल की चिमनियाँ लगाई जाती थी। इन्हीं के धुंधले प्रकाश में वह अपनी पढ़ाई करती थी। कक्षा में और खेलकूद के मैदान में उनकी अनेक सहेलियाँ थी। तीसरी से आठवीं कक्षा तक वह खेल-कूद के लिए विशेष रूप से

चुनी जाती थी। सुशीला जी बचपन से ही अध्ययनशील रही है।[१] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.१३,१४,१५,२८)

१.२ शिक्षा

उनकी प्राथमिक शिक्षा 'गंज प्राथमिक शाला बानापुरा' में हुई। उनके पिताजी ने जुलाई १९६० में लिखावा था। 'उच्चतर प्राथमिक शाला से आठवीं की बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करके हाई स्कूल में आई। हाईस्कूल का नाम था- नेहरू स्मारक उच्चतर माध्यमिक शाला। उस समय वहां १० वीं एस.एस.सी और ११ वीं एच.एस.सी थी। ११ वीं उत्तीर्ण करके कॉलेज में पढ़ी। कॉलेज का नाम 'कुसुम महाविद्यालय सिवनी मालवा था। यह महाविद्यालय सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है बानापुरा सिवनी रोड़ पर स्थित "कुसुम महाविद्यालय से सन् १९७४ में उन्होंने बी.ए.की डिग्री प्राप्त की।

सुशीला जी वाल्मीकि जाति की हैं। वर्णवादी, जातिवादी, विषमतावादी समाज रचना के अनुसार उन्हें अछूत माना जाता था। उस समय दलित पिछड़ी जातियों के घर सवर्ण समाज की बस्तियों से दूर, गांव के बाहर रहते थे। सुशीला जी का घर भी गांव से अलग दूर था। वहां वाल्मीकि जाति के केवल दो घर थे।

१९६०-७० के बीच दलित समाज में लड़कियों का विवाह १४ -१५ वर्ष की आयु में कर दिया जाता था। जाति समाज के लोग उनका विवाह कम उम्र में जल्दी कर देने के लिए कहते थे।

रिश्तेदारों की बातों और जाति समुदाय के रिवाज को देखते हुए, ११ वीं के बाद उनकी पढ़ाई रोकने का विचार पिताजी ने किया था । उनकी जिद्द को देखते हुए पिताजी ने उन्हें पढ़ने की अनुमति दे दी थी । मां के अनुरोध पर पिता और भाईयों ने उनका एडमिशन कॉलेज में करवाया था । घर के काम और छोटे भाई बहन को संभालने के कारण दोनों बड़ी बहनें ज्यादा नहीं पढ़ सकी थी । बड़ी बहन दूसरी कक्षा तक पढ़ी थी । उसके बाद की बहन चौथी तक पढ़ी थी । सुशीला जी अपनी जिद्द, विश्वास, लगन और मां के सहयोग से आगे तक पढ़ी ।

बी.ए. की परीक्षा के बाद उनका विवाह नागपुर निवासी श्री सुन्दरलाल के साथ हुआ। वे नागपुर के 'प्रकाश हाईस्कूल' में शिक्षक थे । बी.ए. पास के बाद उनके पति ने टीचर ट्रेनिंग के लिए उनका एडमिशन नागपुर के बी.एड कॉलेज में किया। इस तरह उन्होंने १९७४ में नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर से बी.एड. की परीक्षा उत्तीर्ण किया । १९७६ में सुशीला नागपुर शहर में एक प्रतिष्ठित और बड़ी स्कूल में शिक्षिका के पद पर आयी थी । और उनके पति शिकण संस्था में बारह साल पहले से एक आदर्श शिक्षक के रूप में सम्मान के साथ अध्यापन कार्य कर रहे थे। १९८६ में एक प्रतिष्ठित कॉलेज में सुशीला जी को हिंदी की प्राध्यापिका की नौकरी प्राप्त हुई ।[२] (डॉ. सुशीला टाकभौरे –टूटता वहम पृ.स.१६,२५,३३,३५,३९,४०)

१.३ स्वभाव

वह बचपन से ही कल्पनाशील स्वभाव की है । बचपन में कल्पना की अधिकता इतनी थी कि वे अंधेरे से डरती थी । अंधेरा देखकर उनका कल्पनाशील मन अनेक डरावनी कल्पनाएँ

करने लगता था। ये जिद्दी स्वभाव की थी। जिस बात को ठान लेती हैं, उसे पूरा करना अपना मकसद बना लेती हैं। अपने इसी जिद्दी स्वभाव के कारण इन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की तथा अपनी रचनाओं को प्रकाशित करवाया।

उनका हृदय संवेदनशील है। किसी के भी दुःख या तकलीफ को देखकर वे स्वयं दुःखी हो जाती है। दया, ममता, करुणा, क्षमा, त्याग और उत्सर्ग की भावना उनके आन्तरिक व्यक्तित्व के गुण हैं। उनका स्वभाव मूल रूप से उन्हें एक विशिष्ट ऊँचे स्तर पर बनाए रखता है। वे हल्की बातें, छिछली, हंसी-मजाक, चुलगी को पसंद नहीं करती। सादगी, सरलता और विनम्रता उनके स्वभाव के लक्षण हैं। वे सबके प्रति प्रेम, अपनापन, सहृदयता रखती हैं।

२. कृतित्व

सुशीला जी के जीवन-परिचय, उनके व्यक्तित्व के पहलू आदि बातों को हम देख चुके हैं। इनसे प्रेरणा पाकर सुशीला जी ने जो साहित्य-रचना की, उसका परिचय संक्षेप में प्राप्त करना आवश्यक है। तभी हम इसका सही मूल्यांकन कर सकेंगे कि उनके व्यक्तित्व का उनके कृतित्व पर क्या असर पड़ा है। सुशीला जी ने अपने साहित्य का आरंभ आठवीं कक्षा से ही किया। बचपन में वे कुछ कहानियाँ, कुछ कविताएँ लिखती थी, मगर उन्हें संभालकर नहीं रखती थी। उनकी पहली कहानी 'धर्मपाल' सन् १९६२ में लिखी जिसे बाद में सुधारित रूप देकर 'व्रत और व्रती' शीर्षक के साथ 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में संग्रहीत किया है।

सुशीला जी ९ वीं १० वीं कक्षा में ही छोटी-छोटी सुंदर कविताएँ लिखती थी। किसी भी कापी के किसी भी पन्ने में कविताएँ लिख लेना और फिर भूल जाना इस कारण वे अपनी सभी कविताओं को इकट्ठा नहीं कर पाई। विद्यार्थी जीवन में लिखी कविताएँ जो सुरक्षित मिल गई, उन्हें 'स्वाति बूंद और खारे मोती' इस प्रथम काव्य संग्रह में संकलित किया है। इसके अलावा दलित समाज और नारी की स्थिति पर उन्होंने अनेक शोधपूर्ण लेख लिखे हैं, जिनमें से कुछ लेख 'परिवर्तन जरूरी है' लेख संग्रह के रूप में प्रकाशित हुए हैं।

सन् १९९३ के बाद उनके लेखन में विशेष परिवर्तन आया है। इसके पश्चात साहित्य में उनकी दृष्टि तीखी, तर्कपूर्ण और समीक्षात्मक है। विशेषकर दलित साहित्य के क्षेत्र में उनकी एक पहचान बनी है। सुशीला जी के रचना-संसार को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।

कहानी संग्रह

१. टूटता वहम

२. अनुभूति के घेरे

३. संघर्ष

४. ज़रा समझो

काव्य संग्रह

१. स्वाति बूँद और खरे मोती

२. यह तुम भी जानो

३. तुमने उसे कब पहचाना

४. हमारे हिस्से का सूरज

नाटक

१. नंगा सत्य

उपन्यास

१. नीला आकाश

२. वह लड़की

३. तुम्हें बदलना ही होगा

एकांकी संग्रह

१. रंग और व्यंग्य

लेख संग्रह

१. परिवर्तन जरूरी है

विवरण

१. हिंदी साहित्य के इतिहास में नारी

२. भारतीय नारीः समाज और साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ में

आत्मकथा

१. शिकंजे का दर्द

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ

सुशीला जी वर्तमान साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में लगातार लिख रही हैं दैनिक लोकमत समाचार, दैनिक नवभारत 'युद्धरत आम आदमी' (त्रैमासिक पत्रिका, हजारीबाग, बिहार), 'सुमन लिपि' (मुंबई, नागमय संस्कृति), 'पूर्वदेवा' (उज्जैन मध्य प्रदेश), 'लोकसूचक' (कानपुर), 'प्रज्ञा साहित्य' (फर्रुखाबाद), 'अंगुतर' (नागपुर), 'जाग बिरावर' (नागपुर), 'वाल्मीकि परिवर्तन' (मुंबई), 'हंस' (विल्ली), 'सरोपमा' (पंजाब), 'माझी जनता' (नागपुर), 'अभिमूकनायक' (दिल्ली) आदि।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाएँ

नवभारत, लोकमत समाचार (नागपुर), नवभारत टाईम्स, राष्ट्रीय सहारा (दिल्ली), नई दुनिया, दैनिक भाष्कर (भोपाल), ग्रीनसत्ता (दिल्ली), सुमन लिपि, युद्धरत आम आदमी आदि।

संपादन कार्य

सुशीला जी लेखन के साथ-साथ संपादन कार्य से भी जुड़ी हैं। दलित वाल्मीकि समाज में चेतना एवं जागृति के उद्देश्य से उन्होंने संपादन कार्य किया है।

१. दलित वाल्मीकि एवं सफाई कर्मी समाज में जागरण के लिए प्रकाशित पत्रिका 'जाग बिरावर' का प्रबंध संपादन।

२. फुले-आंबेडकरी विचार की प्रतिनिधि पत्रिका 'अंगुत्तर' में संपादकीय सहयोग। 3. यशोधरा महिला मंडल, द्वारा प्रकाशित 'आम्ही मैतरणी' (मराठी) पत्रिका की उपाध्यक्षा आदि।

साहित्यिक संस्थाओं से संबंध

१. फुले-आंबेडकरी लेखक संघ, नागपुर।

२. ऑल इंडिया प्रोग्रेसिव वुमेन्स, आर्गनाइजेशन, नागपुर।

३. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा।

४. लोहिया अध्ययन केंद्र, नागपुर।

५. सेंटर फॉर अल्टरनेट, दलित मिड़िया, दिल्ली।

६. महिला मुक्ति आंदोलन की सक्रिय संस्था नेशनल अलाइन्स ऑफ वुमेन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, सुशीला जी ने सिर्फ किसी एक विधा को ही साहित्य के लिए नहीं चुना। बल्कि साहित्य की विविध विधाओं को अपनाया है, जैसे कविता, कहानी, निबंध, एकांकी, नाटक, संस्मरण आदि में उनका लेखन कार्य जारी है।

साहित्य लेखन की शुरुआत

लेखन के प्रति उनकी रुचि बचपन से ही थी। जब ये पाँचवी- छठी कक्षा में थी तभी से तुकबन्दी करती थी। जब ये आठवीं कक्षा में थी तो इनके छोटे भाई ने कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा था। भूख के कारण उनकी व्याकुल स्थिति को देखकर इन्होंने 'व्रत और व्रती' शीर्षक से कहानी लिखी थी। जिसे बाद में 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में छापा गया।

स्कूल में पढ़ते समय किसी भी कापी के पीछे के पन्नों में वे अपनी साहित्य रचनाएँ लिखती थी। कापियाँ इधर-उधर हो जाने पर वे अपनी उन सभी रचनाओं को इकट्ठा नहीं कर पाई, परन्तु कुछ कविताएँ जो सुरक्षित बच गई उन्हें 'स्वाति बूंद और खारे मोती' में संकलित किया गया। तब से वे कहीं कुछ अलग देखती या सुनती तो उनकी भावनाएँ संवेदना के साथ साहित्य में लहराने लगती। घर के काम करते हुए कभी मसाले पीसते हुए या रोटियाँ सेंकते हुए कोई भाव मन में आया तो दौड़कर किसी भी पन्ने पर उसे लिख देना।

१९७० में जब ये ११ वीं कक्षा में थी तो 'नई दुनिया' नामक हिन्दी अखबार में सवर्ण सामाजिक नेता तथा अछूत कन्या के विवाह सम्बन्धी एक विज्ञापन छपा था। उन्हीं भावनाओं और विचारों का मंथन निष्कर्ष रूप में 'सिलिया' नामक कहानी के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित है। बी.एड करते समय कालेज की पत्रिका 'स्मारिका' में पहली बार इनकी 'मृगतृष्णा' कविता

छपी थी। इसके बाद तो इनके लेखन का अबाद्ध सिलसिला शुरू हो गया। इस तरह से इनके साहित्य-लेखन का आरम्भ हुआ।

यात्राएँ

साहित्य और समाज से जुड़ी सुशीला जी ने विचारों के प्रचार-प्रसार और विचारों के आदान-प्रदान की दृष्टि से पूरे देश की यात्रा की है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पूर्व बंगाल आदि प्रदेशों में अनेक बार वे यात्राएँ कर चुकी हैं। डॉ. सुशीला जी ने अगस्त २००४ में श्रीलंका की यात्रा की। समकालीन साहित्य सम्मेलन की ओर से श्रीलंका में आयोजित 'अन्तरर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मेलन' में इन्होंने सक्रिय सहभागिता निभाई है।

इसके बाद २००६ में ग्रेट ब्रिटेन की यात्रा की। समकालीन साहित्य सम्मेलन की ओर से यूके में आयोजित 'अन्नरर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मेलन' में भी इनकी सक्रिय सहभागिता रही है। इन्होंने यू के के अनेक बड़े शहरों तथा विशेष क्षेत्रों का भ्रमण किया। फिर इन्होंने जुलाई- अगस्त २००७ में दुबई की यात्रा की। 'अन्तर्राष्ट्रीय समकालीन साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन में इनकी सक्रिय सहभागिता रही है।

उनकी यात्राओं का उद्देश्य नारी उत्थान और सामाजिक समानता का प्रयत्न रहा है। उन्होंने अनेक साहित्यिक गोष्ठियों में साहित्य संबंधी चर्चाएँ और आलेख-पठन किया है।

पुरस्कार और सम्मान

सुशीला जी के लेखन और सामाजिक कार्यों से उनकी अपनी एक पहचान बनी है। उनको सामाजिक और साहित्यिक संस्थाओं ने सम्मानित किया है। विशेष रूप से

१. मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी उज्जैन की ओर से 'यह तुम भी जानो' काव्यसंग्रह को दिनांक ८ सितंबर, १९९६ में दस हजार रुपयों के नगद पुरस्कार से सम्मानित किया है।

२. मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री. दिग्विजय सिंह के हाथों 'मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी विशिष्ट सेवा सम्मान' से सन् १९९७ को सम्मानित किया है।

३. उत्तर प्रदेश दलित साहित्य अकादमी (फरूखाबाद) द्वारा 'पद्मश्री गुलाबबाई सम्मान' से सम्मानित किया गया है।

४. मेगनम फाउंडेशन नागपुर, द्वारा सन् १९९८ में 'ज्ञान ज्योति' पारितोषिक सम्मान प्राप्त हुआ है।

५. हिमाचल प्रदेश की साहित्य संस्था 'समन्वय हिमाचल' की ओर से 'रानी रत्नकुमारी पुरस्कार एवं 'सारस्वत सम्मान' सन् १९९८ में प्राप्त हुआ है।

६. रमणिका फाउंडेशन की ओर से ' सावित्री बाई फुले ' सम्मान एवं पुरस्कार।

संदर्भ

१.डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, प्रकाशन अनिरुद्ध बुक्स १९, टैगोर मार्ग, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली -110033, संस्करण -2012, पृ.स.१३

वही – पृ.स.१४

वही – पृ.स.१५

वही – पृ.स.२८

२. वही – पृ.स.१६

वही -पृ.स.२५

वही – पृ.स.३३

वही – पृ.स.३५

वही – पृ.स.३९

वही – पृ.स.४०

द्वितीय अध्याय

दलित विमर्श : अवधारणा एवं स्वरुप

प्रस्तावना

दलित विमर्श एक ऐसा विमर्श है जो शोषित, पीड़ित, अपमानित आदि लोगों की व्यथा को व्यक्त करता है। यह विमर्श उन लोगों के हताशा, निराशा, अपमान को प्रस्तुत करता है जो हजारों वर्षों से वर्णवादी समाज व्यवस्था के कारण पीड़ित एवं शोषित होता रहा है। जिसे भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे नीचा दर्जा दिया गया है।

आधुनिक काल में डॉ. भीमराव अम्बेडकर जीवनभर वर्णवादी व्यवस्था का विरोध करते रहे। वे हिंदू थे परन्तु बाद में बौद्ध हो गए। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि वे समाज में वर्ण व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध व्यक्त करना चाहते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति जन्म से नहीं बल्कि योग्यता एवं कर्म से पहचाना जाए। यह प्रश्न भी उठ सकता है कि वह बौद्ध क्यों हुए ? क्योंकि गौतम बुद्ध क्षत्रिय होने के बाद भी ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने उस समय ऐसे वैदिक कर्मकांडों का विरोध किया था जो वर्ण व्यवस्था, तथा पशु बलि पर आधारित समाज था। बौद्धधर्म में सभी वर्णों के लिए द्वार खुले थे तथा जिसमें अहिंसा परमोधर्म, और मानवता का संदेश देकर आचरण की शुद्धता पर बल दिया। ऐसे महापुरुषों के कारण आज दलित विमर्श प्रकाश में आया है।

१.स्वरुप

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही है। समाज में जब सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्थित होना शुरू होती है तब उसको व्यवस्थित बनाये रखना

साहित्यकारों का मूल लक्ष्य होता है। साहित्यकारों का समाज के साथ सरोकार होने के कारण वह अपने साहित्य में सामाजिक कुरीतियों को, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी पहलुओं को कृतिबद्ध करना शुरू करता है। दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है जो भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। दलित शब्द संस्कृत में "दल" यानी अधिकांश से आता है और इसका अर्थ होता है "समूह"। दलितों को पहले अनुसूचित जातियों के रूप में जाना जाता था, लेकिन अब उन्हें सामाजिक और आर्थिक समृद्धि के लिए समाज में अधिक से अधिक योगदान करने का अधिकार प्राप्त है।

दलित विमर्श का मुख्य उद्देश्य दलितों के अधिकारों की सुरक्षा करना, उनकी समस्याओं को समझना और समाधान करना है। इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है दलितों के साथ दिया जाने वाला उचित सम्मान और उनके साथ समरसता बनाए रखना।

दलित विमर्श के कई पहलुओं में शिक्षा, रोजगार, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, और सामाजिक अनुसंधान शामिल हैं। इसका मुख्य उद्देश्य दलितों के लिए अधिक विकास की संभावनाओं को बढ़ाना है। दलित विमर्श का महत्व यह है कि यह समाज में समानता, न्याय, और समावेशीकरण को बढ़ावा देता है। यह समग्र समाज के विकास और प्रगति के लिए आवश्यक है।

दलित विमर्श में सबसे महत्वपूर्ण विषयों में से एक शिक्षा है। शिक्षा का महत्व दलित समुदाय के लिए अत्यधिक है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति समाज में समानता और सम्मान की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए, दलित विमर्श में शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया

जाता है, जैसे कि शिक्षा की उपलब्धता, गुणवत्ता, और दलित छात्रों के शैक्षिक संघर्षों का समर्थन।

दलित विमर्श का रूप विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है, जैसे कि सामाजिक विचारधारा, सांस्कृतिक विरोध, और राजनीतिक आंदोलन। यह विमर्श समाज के न्याय और समानता के मूल्यों को लेकर होता है, जिसमें दलित समुदाय की उत्थान और उनके अधिकारों की सुनिश्चितता के लिए संघर्ष शामिल होता है। यह एक प्रकार की चेतना बढ़ाता है और समाज में बदलाव लाने का प्रयास करता है।

दलित विमर्श के मुख्य आधार के रूप में बौद्धिक, सामाजिक, और आर्थिक स्तर पर उनके अधिकारों और उनकी समर्थकता की अदालतीकरण का समावेश है। इसमें शिक्षा, रोजगार, आर्थिक सुधार, और समाजिक समानता के लिए कई योजनाएं और नीतियां शामिल हैं। दलित विमर्श के माध्यम से, समाज द्वारा उनके प्रति भेदभाव और उत्पीड़न को खत्म करने की दिशा में कदम उठाने का प्रयास किया जाता है।

दलित विमर्श के माध्यम से समाज में सामाजिक जागरूकता और सामाजिक समर्थन की बढ़ती आवश्यकता होती है। इसके लिए समाज को दलितों के साथ न्यायाधीन और समान व्यवहार करने के लिए सक्षम बनाने की जरूरत होती है। दलित विमर्श का मुख्य उद्देश्य समाज में समानता, न्याय, और सहायता को प्राप्त करने के लिए जीवन में गहराई से प्रभावी होना है।

दलित विमर्श के रूप में जातिवाद और सामाजिक असमानता के खिलाफ एक व्यापक सामाजिक आंदोलन के तौर पर उभरा है। यह आंदोलन दलितों की आत्म-सम्मान को बढ़ाने,

उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने और उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लक्ष्य के साथ चल रहा है।

दलित विमर्श के रूप में, लोग जातिवाद के खिलाफ सभी रूपों में लड़ रहे हैं, समाज में जातिवादी विचारधारा को हटाने और दलितों को समाज के साथ समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। यह आंदोलन जातिवाद, उत्पीड़न, और दलितों के अधिकारों के लिए लड़ता है। यह उनकी आवाज को सुनने, उनकी समस्याओं को समझने और उन्हें समाज में समानता के लिए लड़ता है।

दलित विमर्श की व्यापकता ने उसे एक सामाजिक और राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया है। इसके माध्यम से, दलित समुदाय अपने अधिकारों के लिए लड़ता है और अपने आत्म-सम्मान को बढ़ाता है। यह एक नया सामाजिक संघर्ष का रूप धारण कर रहा है, जिसमें दलित समुदाय अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है और उसे समाज में समानता की दिशा में अग्रसर करने के लिए प्रेरित कर रहा है।

दलित विमर्श की भूमिका में, सामाजिक और आर्थिक असमानता को खत्म करने के लिए नीतियों और कानूनों में संशोधन की मांग की जा रही है। दलितों को समाज में समान अधिकारों का लाभ उठाने के लिए शिक्षा, रोजगार, और अन्य संसाधनों की पहुंच में सुधार किया जा रहा है। दलित विमर्श ने समाज में समानता और न्याय की दिशा में एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभरा है और लोगों को इस विचारधारा को समर्थन और समारोह करने के लिए प्रेरित किया है।

समाज में जातिवाद और असमानता के खिलाफ लड़ाई जारी रहेगी, और दलित विमर्श उसे सशक्त और अधिक प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

१.१ दलित विमर्श : परिवेश एवं विभिन्न आयाम

सामाजिक परिवेश: दलितों का सामाजिक परिवेश अत्यधिक प्रतिबंधित और विवादास्पद होता है। उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि सामाजिक अपमान, भेदभाव, और उत्पीड़न।

आर्थिक परिवेश: दलितों का आर्थिक परिवेश भी कई चुनौतियों से भरा होता है। उन्हें अधिकारों के पहुंच में कई बाधाएं आती हैं, जिससे उनका आर्थिक विकास अधूरा रह जाता है।

शैक्षिक परिवेश: दलितों का शैक्षिक परिवेश भी अत्यधिक प्रतिबंधित होता है। उन्हें शिक्षा की उच्चतम स्तरों तक पहुंचने में कई बाधाएं आती हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास और आत्मसम्मान कम होता है।

सांस्कृतिक परिवेश: दलितों का सांस्कृतिक परिवेश भी अधिकतम समस्याओं से घिरा होता है। उन्हें अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों और सामाजिक समारोहों में भाग लेने में विभिन्न प्रतिबंधिताएं आती हैं।

राजनीतिक परिवेश: दलितों का राजनीतिक परिवेश भी कई चुनौतियों से भरा होता है। उन्हें राजनीतिक संगठनों में पहले से ही भेदभाव और असमानता का सामना करना पड़ता है।

दलितों का परिवेश अत्यधिक प्रतिबंधित और असमान होता है, जिससे उन्हें समाज में समानता और न्याय की प्राप्ति में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दलित विमर्श में इन परिवेशिक तत्वों का विश्लेषण किया जाता है ताकि समाज में उन्हें समानता और न्याय की प्राप्ति के लिए उपाय किए जा सकें।

१.२ दलित विमर्श में जाति भेद

सामाजिक संरचना: भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही जाति व्यवस्था व्यापक रूप से मौजूद है। इसमें जाति के आधार पर लोगों को समाज में स्थिति दी जाती है, और उन्हें अनेक सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया जाता है। इस संरचना में दलित समुदाय को सबसे निचले पायदान पर स्थिति दी जाती है, जिससे उन्हें समाज में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक अपमान: दलित समुदाय को सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ता है। उन्हें अनेक चीजों से वंचित किया जाता है, जैसे कि मनुवादी विचारधारा, उत्पीड़न, और अन्याय। यह अपमान उन्हें समाज में अलग करता है और उन्हें विकास के साथ सामाजिक और आर्थिक स्तर पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

आर्थिक भेदभाव: दलित समुदाय को आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। उन्हें अधिकारों और सुविधाओं के पहुंच में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिससे उनका आर्थिक विकास अधूरा रह जाता है।

शैक्षिक असमानता: दलित समुदाय को शिक्षा के पहुंच में भी असमानता का सामना करना पड़ता है। उन्हें शिक्षा की उच्चतम स्तरों तक पहुंचने में कई बाधाएं आती हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास और आत्मसम्मान कम होता है।

२. दलित शब्द का अर्थ

'दलित' इस शब्द का अर्थ – जिसका शोषण हुआ, दबाया गया हो, अपमानित, उत्पीड़न, घृणित, अछूत, अस्पृश्य आदि। 'दलित ' शब्द का शब्दिक अर्थ उत्पीड़ित या टुटा हुआ है।

जिसका समाज में कोई अस्तित्व नहीं है, कोई स्थान, सम्मान नहीं है इन्हें दलित कहते है। उनको समाज एक अलग नजरों से देखते है जैसे वे कोई अलग तरह के इंसान है। अंग्रेजी में 'दलित ' शब्द को 'डिप्रेस्ड' शब्द दिया है। अंग्रेजी हिंदी कोश में डिप्रेस्ड क्लास का अर्थ शोषित वर्ग, दलित वर्ग दिया हुआ है।

भारत में दलित शब्द का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी से ही होता है यद्धपी दलित शब्द आधुनिक है लेकिन शब्द से जुड़ी भावना प्राचीन काल में ही उत्पन्न हो गयी थी। प्राचीनकाल

में दलितों के लिए शूद्र, अति शूद्र, अस्पृश्य, अछूत आदि शब्दों का प्रयोग किया करते थे l शूद्र और दलित को भारतीय समाज के उच्च वर्ग ने अस्पृश्य अपवित्र माना गया।

दलितों को समाज में शिक्षा प्राप्त करना के लिए बहुत कष्ट झेलना पड़ा। उनके लिए आसान नहीं था शिक्षा प्राप्त करना। उच्च वर्ग के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था और दलित होने के कारण दलित बच्चों को सबसे पीछे बैठाया जाता था। यह भेदभाव आज भी कही ना कही दिखाई देता है। शिक्षा को लेकर ही यह भेदभाव दिखाई नहीं देता और कहीं चीजों पर दिखाई देता है ; जैसे काम को लेकर।

उच्च या ब्राह्मण वर्ग के लोग दलित वर्ग के लोगों को छूते भी नहीं है, यदि गलती से भी दलितों का हात भी लगा तो वह नहाकर अपने आप को पवित्र करते है। वे मानते है कि उनके छूने से वे अपवित्र हो जाते है।

दलित, शब्द का अर्थ देखने के बाद यह देखना रोचक हो सकता है कि भारत में इसका प्रयोग कब से होने लगा। सन् १९३३ में अंग्रेजी प्रशासन ने जातीय निर्णय लिया जिसमें 'डिप्रेस्सड क्लास' (पद दलित वर्ग) शब्द का प्रयोग किया गया। असल में यह शब्द 'दलित' वर्ग के लिए प्रस्तुत किया गया था।

"उन्नीसवीं शताब्दी से ही भारत में 'दलित' शब्द का प्रयोग इस विशिष्ट अर्थ में आरंभ हुआ। परंतु 'दलितवन' भारतीय समाज में अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन साहित्य में शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल अंत्यज व अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें स्पष्ट विदित होता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में निचली जाति के अस्पृश्य हरिजन को ही सच्चे अर्थ में दलित कहा जा सकता है।"

३. परिभाषा

हिंदी साहित्य में दलित और गैर दलित साहित्यकार है। जिन्होने अपने अपने मतनुसार अपने विचार व्यक्त किया।

डॉ. देवेंद्र दीपक के अनुसार –“अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग दलित है। सामाजिक स्तर पर जो अस्पृश्य है वह दलित है।”[१] (डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.२२)

डॉ. मैनेजर पांडे के अनुसार “अगर दलित का अर्थ गुलामी की स्थिति में रहने वाले लोगों से है तो उसके अंदर गांधी के हरिजन, इस देश के आदिवासी और स्त्रियां सब शामिल है लेकिन मैं जब दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में सिर्फ वही है जिन को भारतीय वर्ण व्यवस्था में ‘दलित’ कहा जाता है जिनको समाज में अछूत माना जाता है।”[२] (डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.१९)

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर का कहना है कि “दलित वह है जिसका दलन किया गया हो। उपेक्षित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते है। इस तरह दलित शब्द की परिभाषा के अंतर्गत जहां सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जातिवाद से अभिशप्त दलित, शोषित, उत्पीड़ित व्यक्ति आते है वही सदियों से उत्पीड़ित, उपेक्षित, अपमानित, शोषित, सामाजिक बंधनों में बंधित नारी और बच्चे भी इसी श्रेणी में आते है। भूमिहीन, अछूत, दास,

गुलाम, दीन और पराश्रित-निराश्रित भी दलित ही है ।”[३](डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.१९)

डॉ. एन. सिंह के अनुसार- “दलित का शाब्दिक अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया है। चाहे शस्त्र के द्वारा या शास्त्र के द्वारा.... इसमें स्त्री और पिछड़े वर्ग के साथ सवर्ण जातियों के वह लोग भी आते है जिनका किसी भी दशा में मानसिक या आर्थिक शोषण हुआ है ।”[४] (डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.२१)

रत्नकुमार साँभरिया – “दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ ‘दबा हुआ’ मानते है। आत्म सम्मान और आत्मविश्वासहीन, मनोबल की कमी, अपमान, शोषण, उत्पीड़न और प्रताड़ना को जिसने अपनी नियति मान लिया हो वही दलित है।”[५](डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.२१)

ओमप्रकाश वाल्मीकि – “मानवीय अधिकारों से वंचित सामाजिक तौर से जिसे नकारा गया हो, वही दलित है । जयन्त परमार-शुद्र, महाशूद्र, अतिशूद्र, अस्पृश्य, अन्त्यज, अछूत, बहिष्कृत, हरिजन तथा दक्षिण भारत के पंच को दलित मानते है ।”[६](डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर, पृ.स.२१)

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द को परिभाषित करते हुऐ कहते है “दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है ।”[७] (ओमप्रकाश वाल्मीकि -दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृ.स.१३)

कँवल भारती का मानना है कि “ दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है । जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर अछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती है, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है ।”८ (ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, पृ.स.१३)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का मत है कि दलित मूलत : वे है जो आर्यो द्वारा पराजित भारत के मूलवासी है । जिन्हें आर्यो द्वारा दास बनाकर अछूत घोषित कर दिया गया । इन सब विचारों की पुष्टि करते हुए डॉ. धर्मवीर भारती कहते हैं कि “ दलित हिंदू नहीं है ना वे किसी हिंदू – धर्म ग्रंथ को मानते है ना ही कोई धर्मग्रंथ दलितों का हो सकता है । दलित हिंदू नहीं हो सकते है । क्योंकि हिंदू एक नया शब्द है । दलित का धार्मिक इतिहास इससे पुराना है ।”

डॉ. सी. बी. भारती की मान्यता है कि “ नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है । जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं का पूर्वाग्रहो से मुक्त साहित्य सृजन है हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते है ।”९ (ओमप्रकाश वाल्मीकि -दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, पृ.स.१५)

अर्जुन डाँगले का मान्यता है कि “दलित शब्द का अर्थ साहित्य के संदर्भ में नए अर्थ देता है । दलित यानी शोषित, पीड़ित समाज, धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, संस्कृतिक शोषण किया जाता है, वह मनुष्य और वही मनुष्य क्रांति कर सकता है । यह दलित

साहित्य का विश्वास है।"[१०] (ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, पृ.स.१५-१६)

मोहनदास नैमिशरण 'दलित' शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि 'दलित' शब्द मार्क्स प्रणति सर्वहार शब्द के लिए समानार्थ लगता है। किन्तु इन दोनों में अंतर भी है। दलित की व्यापत्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक 'दलित' व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को 'दलित' कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।[११] (मोहम्मदरफी हंचिनाल -हिन्दी की चर्चित दलित कहानियाँ एक मूल्यांकन, पृ.स.१२)

संदर्भ

१. डॉ. सोनिया माला – हिंदी दलित कहानियों के स्वर,नमन प्रकाशन नई दिल्ली -110002, पहला संस्करण -2017, पृ.स.२२

२. वही - पृ.स.१९

३. वही - पृ.स.१९

४. वही - पृ.स.२१

५. वही - पृ.स.२१

६. वही - पृ.स.२१

७. ओमप्रकाश वाल्मीकि -दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागज, नई दिल्ली -2001, पृ.स.१३

८. वही - पृ.स.१३

९. वही - पृ.स.१५

१०. वही - पृ.स.१५

११. वही - पृ.स.१२

१२. मोहम्मदरफी हंचिनाल -हिन्दी की चर्चित दलित कहानियाँ एक मूल्यांकन, रोली प्रकाशन सी -449, गुजैनी कानपुर -22, संस्करण -प्रथम 2015, पृ.स.१२

तृतीय अध्याय

डॉ. सुशीला टाकभोरे की कहानियों का विश्लेषण

प्रस्तावना

दलित आंदोलन से जुड़ी महिला लेखिकाओं में डॉ. सुशीला टाकभौरे का नाम उल्लेखनीय माना जाता है। दलित साहित्य को नया रूप देने और दलितों में जागृती और संघर्ष की चेतना जगाने वाले उनका साहित्य सारे दलित वर्ग के लिए नई प्रेरक है। दलित साहित्य के आंदोलन से संबंधित अनेक कहानियों की रचना इन्होंने किया है। इस समाज के मानूवादी विचारधारा वालों ने हजारों बरसों से जातिभेद करते आ रहे हैं। दलित का दलन करके रखा है साथ ही साथ दो रूप से शोषण हो रहा है दलित स्त्री इन सारे विचारों से संबंधित अनेक कहानियों का रचना कर चुके हैं। सुशीला जी कहानी के साथ-साथ अपनी जिंदगी की कहानी तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों के साथा जोड़कर लिखी है। तट्स्थल, आत्मालोचन युगीन परिवेश के साथ उसकी संबंध।

सुशीला जी अपने रचनाओं में उन घटनाओं, प्रसंगों और स्थितियों का उल्लेख करती है जिसका गहरा संबंध उनके प्रांरभिक जिंदगी से रहा है और एक समय जिसने उसके जीवन की दशा और दिशा दोनों को पूरी तरह से बदल दिया था। लेखिका सिर्फ दलित जीवन की कथा लिखना चाहती है। सामाजिक जाति-भेद के अपमान को सहते हुए, सवर्ण मानसिकता द्वारा दिएअभाव और अवरोधों के संताप से संघर्ष करते हुये प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रही है।

‘मेरा बचपन’

इस कहानी में वह अपने बचपन की यादों को बयां करती है, जो उनके जीवन में अहम भूमिका निभाते है। कहानी का मुख्य पात्र ‘सुशीला ’,जो अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए लिखी है। लेखिका का जन्म गाँव में हुआ था। बच्चे होने पर गाँव में पंडितों से बच्चे का नाम पूछने की परम्परा थी । इस परम्परा को निभाते हुए गाँव के एक पंडित में लेखिका का नाम गोदावरी बताया और दूसरे पंडित ने रेणुका बताया था। लेकिन उनके पिता को यह दोनों नाम पसंद न आने के कारण उन्होंने ‘सुशीला’ नाम जन्म पंजीयन रजिस्टर में लिखवाया। पहले उनके गाँव में इमारत नहीं थी। गाँव के सेठ - साहूकारों के घर में स्कूल होना था l इसी कारण उन्हें उनके घर में जाकर पढ़ने का अधिकार नहीं था। अछूतों को शिक्षा सवैधानिक अधिकार मिलने के बाद स्कूल जा सके और पढ़ सके थे।

गाँव के बड़े बुज़ुर्ग अक्सर यही कहते थे -“लड़कियाँ तो चिरैया है समय आते ही उड़कर परदेस चली जाएंगी... ।” “लड़कियाँ चूल्हे का लूगड़ा है। जहाँ का लूगड़ा वही जले तो अच्छा है ।” [१] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.१५) सामाजिक मानसिकता की यह भावना एक शिकंजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधम रही है। उनका घर स्कूल के नजदीक था l वह स्कूल के बच्चों को देखती थी। उनका सुन्दर पिशाक, खेलते हुए और पढ़ाई करते हुए देखती थी । उनका भी मन होता था इसलिए वह माँ से जिद्द करके कहती थी कि -“ मेरा भी नाम स्कूल में क्यों नही लिखावते? मैं कब स्कूल जाऊंगी? स्कूल के प्रति उनके ललक देखकर माँ खुश होती थी ।”[२] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.१६)

जुलाई १९६० में पिताजी ने प्रायमरी स्कूल ‘गंज प्राथमिक शाला बानापुरा ’की पहली कक्षा में लेखिका का न लिखवाया -‘कुमारी सुशीला रामप्रसाद घांवरी।’ कक्षा में ब्रह्मण, बनियों के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था और पिछड़े जाति के बच्चों को पीछे बैठाया जाता था। लेखिका को पहले से पता था की वह अछूत है उसके छूने से ब्रह्मण के बच्चे नहकर शुद्ध होते थे इसलिए वह उनसे दूर ही रहती थी।

उसने यह भी देखा है कि स्कूल से लौटने पर सवर्ण के बच्चों को घर के बाहर ही पानी छिड़क कर पहने हुए कपड़े उताराकर उन्हें दूसरे कपड़े पहने के लिए दिये जाते थे। हमारी ही समाने वे नाक - भौं सिकोड़कर नफ़रत से कहते थे - “न जाने कौन - कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर आते है। सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।” [३](डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.१७)

छोटे भाई मोहन और कमल स्कूल जाने के समय बहुत परेशान करते थे। स्कूल नहीं जाना चाहते था। शायद मास्टरजी उसे डाँटते - मारते होंगे, कक्षा के लड़के उसे सताते होंगे। सबसे छोटे कमल ने भी इसी तरह कई दिनों तक सताया था, वह भी कई दिनों तक इसी तरह परेशान रहा। मैंने ऐसी परेशानी से छुटकारा अलग तरीके से पाया था। पढ़ाई और पढ़ाई, यही मेरी मंजिल का रास्ता बन गया। मैं शिक्षकों और सहपाठीयों की नाराजी से बचती रही, पढ़ाई करके पास होती रही। सन् १९६२ में दूसरी कक्षा में हम -‘हिंदी - चीनी भाई भाई ’ के नारे लगाते थे। हवाई जहाज की आवाज सुनकर और आसमान में हवाई जहाज उड़ते देखकर कक्षा के पुरे बच्चे चिल्लाते थे, ‘हिंदी - चीनी भाई भाई।’ तब हमारे शिक्षक भी हमें नारे लगाने के लिए कहते थे।

वे हँसते हुए कहते -" और जोर से बोलो, 'हिंदी - चीनी भाई भाई '... " [४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.१९)

गाँव में छुआछूत - जातिभेद की भावना बहुत थी, स्कूल में भी थी। स्कूल में बच्चे अपनी जगह के लिए लड़ते - झगड़ते बैठ जाते। मैं पीछे फर्श पर बैठती थी। एक दिन न जाने क्या सोचकर मैं कक्षा में गुरूजी के टेबल के सामने तीसरे क्रमांक पर बैठ गई। पढ़ते समय छगन गुरूजी ने मेरी तरफ देखकर गुस्से से कहा था - "सुशीला, तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।" फिर उन्होंने पूरी कक्षा को डांटकर कहा था - "जिसको जिस जगह पर बैठने के लिए कहा गया है वह अपनी जगह पर बैठेगा। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा।"[५] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.२०)

गुरूजी के भय से वह अपना बस्ता लेकर पीछे बैठ जाती थी। सवर्ण समाज का व्यवहार जात - पात, भेदभाव के आधार पर हमें लगातार प्रताड़ित करता था। इस कहनी में देख सकते है पिछड़े, अछूत को शिक्षा के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता था।

'झरोखे'

इस कहनी में लेखिका ने अपने स्कूल के दिनों को याद करती है। उन्हें तीसरी कक्षा की बातें अच्छी तरह रे याद है। तीसरी कक्षा की शिक्षिका शांति कश्यप बहनजी सभी बच्चों से मुझे हुशियार और समझदार मानती थी। बहनजी ने उसे कक्षा का विद्यार्थी प्रमुख बना दिया था। वह

खेलकूद में अच्छी थी, उसे खेलकूद में विशेष रूप से चुनी जाती थी। लम्बी दौड़, कुर्सी दौड़, चम्मच कंचा दौड़ जैसे खेलों में प्रथम द्वितीय आती। लड़कियों की खो - खो टीम की वह एक योग्य खिलाड़ी मानी जाती थी। हमारी स्कूल 'गंज प्राथमिक शाला' के खेलकूद के शिक्षक गोकुल प्रसाद ठाकुर कहते थे -"यदि सुशीला खो - खो टीम में नहीं रहेगी तो अपनी टीम जीत नहीं पायेगी।"[६] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.२१)

अंतर्तहसील खेलकूद स्पर्धाओं के लिए मैं अपने स्कूल के खिलाड़ी बच्चों और शिक्षकों के साथ सिवनी मालवा तहसील के स्कूल जाती थी। स्पर्धाएँ खत्म होने पर या लौटते समय कभी - कभी सिवनी मालवा में रहने वाले शिक्षक हमें अपने घर भी ले जाते थे। सिवनी और बानापुर के बीच दो ढाई किलोमीटर की दुरी है। सिवनी में रहने वाले शिक्षक ठाकुर गुरूजी के घर, कक्षा पाँचवी के टूनामेंट के समय गयी थी।

माता - पिता ने बचपन से ही सिखाकर और समझाकर रखा था - हम निम्न जाति के है, ऊँची जाति के लोग अपने से भेदभाव मानते है। कभी किसी सहेली के घर के भीतर नहीं जाना, न ही उनके घर के बर्तन में कुछ खाना पीना। माँ की सिखाई सब अच्छी बातों के साथ यह बात भी अच्छी तरह याद थी कि हम अछूत हैं और जहाँ तक हो सके हमें खुद सवर्णो से दूर रहना चाहिए।

जब वह पाँचवी कक्षा में पढ़ रही थी, लगभग पंद्रह - बीस बच्चों के साथ वह भी दो दिवसीय टूनामेंट में भाग लेने सिवनी मालवा गई थी। पहले दिन अनेक स्पर्धाओं में हमारे स्कूल के बच्चे जीत रहे थे और वह भी। गुरूजी बहुत खुश थे। उन्होंने कहा - "चलो, सब पहले मेरे घर खाना खाएंगे। फिर सब बच्चों को हम उनके घर तक पहुँचएंगे।" वह उनके घर जाने के लिए संकोच

कर रही थी। वह सोच रही थी गुरूजी के घर जाना चाहिए? तभी ठाकुर गुरूजी का ऊँचा स्वर सुनाई दिया -“क्यों सुशीला क्या सोच रही हो? भूख नहीं लगी है क्या? चलो सब साथ में।”[७] (डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.२२)

उन्होंने सबको कमरे में बैठाया। और मैं लड़कियों से थोडी दूर कोने में चुपचाप बैठी थी। गुरूजी ने उसे अलग बैठे देखकर डाटा और अपने हाथों से खाना खिलया। कैलास बहनजी और कुछ ब्रह्मण बच्चे उसकी तरफ घृणा भाव से देख रहे थे, उसने उनकी परवाह नहीं की। दूसरे दिन पुनः टूर्नामेंट में खेल प्रतियोगिताओं में जीत हसील हुई थी और सबसे अधिक गुरूजी खुश हुए थे। उस दिन गुरूजी के कहने पर हेमलता ठाकुर के साथ उसकी मौसी के घर गई थी उसकी जाति का पता चलने पर उसे घर के दरवाज़े से ही लौटा दिया था।

छठावी कक्षा से आठवी तक की कक्षाएँ मिडिल स्कूल में थी। मिडिल स्कूल के हेडमास्टर पुरोहित जी थे।कक्षा में दो सुशीला होने पर मुझे सुशीला हरिजन कहते थे। स्कूल में यह विशेष ध्यान रखा जाता था कि किसी बच्चे को उसकी जाति के नाम से न पुकार कर हरिजन कहा जाए ताकि वह बच्चा सबसे सामने अपनी जाति के नाम को सुनकर हीन भावना का अनुभव न करें। जब पुरोहित गुरूजी ने सुशीला हरिजन नाम सुना उसने तभी उसका नाम सुशीला सरस्वती रख दिया।

सन् १९६८-६९ में नौवीं कक्षा का साइंस का नया सेक्शन खुला था। ६९-७० में दसवीं का साइंस सेक्शन बना। उस समय ग्यारहवी मैट्रिक थी। ग्यारहवीं में साइंस सेक्शन को परमिशन नहीं मिली। साइंस विषय लेकर ग्यारहवीं करने के लिए सिवनी मालवा जाना पड़ेगा या आसपास

का कोई दूसरा शहर। मजबूर होकर उसने ग्यारहवीं में आर्ट्स लिया और नौवीं से ग्यारहवीं तीन वर्षी की पढ़ाई एक साल में करके अच्छे नंबर से पास हुई।

ग्यारहवीं के बाद बी.ए फर्स्ट ईयर में प्रवेश किया और बी. ए सेकंड ईयर अच्छे नंबर से पास हो गई थी। पुरे गाँव में उनकी चर्चा थी। माँ - बाप अपने बच्चों से कहते थे -"पन्ना बाई की छोरी को इतने नंबर मिले, तुमको क्यों नहीं मिले?"[८] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.२७)

मेरे सहपाठी बच्चे घर में बताते थे - "हमारी क्लास में सुशीला होशियार है।" "कौन सुशीला? " "पन्ना बाई की बेटी।" माँ कभी किसी मकान या दुकान के सामने से गुजरती, तो मकान की स्त्रियां और दुकान पर बैठे सेठ जी उससे जरूर कहते थे -"पन्ना बाई, तेरी छोरी होशियार है, हमारे छोरा - छोरी से भी आगे बढ़ गयी। उसकी पढ़ाई रोकना नहीं। तेरी बेटी बहुत लायक है। कभी कभी तो हिन्दू, महाजन, बामन, बनिया के छोरा-छोरी भी नालायक निकल जाए है। तेरे छोरा - छोरी अच्छे है।" [९](डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम,पृ.स.२७)

मैं रात के १० बजे से दो - तीन तक पढ़कर और माँ के सहयोग और सहमति के साथ, अपनी लगन, मेहनत और इच्छाशक्ति से मैं अच्छे अंक लेकर बी. ए कर सकी। इस तरह सिवनी मालवा तहसील में मैंने वाल्मीकि जाति की पहली ग्रेजुएट लड़की होने का गौरव प्राप्त किया। सवर्णो के मोहल्लो में नहीं रह सकते इसलिए उनका घर गाँव से बाहर, डाक बंगले के पीछे थे। स्कूल में में उनके बच्चों के साथ बैठने , खेलने के बाद उनके घर में नहीं बैठ सकते थे। ए देखकर मन दुःखी हो जाता था तब माँ यही समझती थी –"हमारा काम -रोजगार छोटे होने के कारण

हमसे छुआछूत का भेदभाव किया जाता है। यदि तुम सब पढ़-लिखकर अपनी योग्यता बनाओगे और अच्छी नौकरी करोगे तब तुमसे भेदभाव नहीं करेंगे।"[१०](डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.२८)

लेकिन ऐसा नहीं था जाति के कारण भेदभाव होता था। जाति के प्रति उनकी जिज्ञासा और ऊंच नीच की भावना उनके मन से कभी मिटती नहीं। इसी कारण कितना भी पढ़े लिखे हो जाति के कारण पीछे ही रहते है।

'मेरा समाज'

इस कहानी में लेखिका ने दलित वाल्मीकि समाज की स्थिति का चित्रण करने का कोशिश इस कहानी में किया गया है। साथ ही उनके पिछड़े जाति में रहने के कारण भी बताएं है। दलित समाज के सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं जैसे - बेरोजगारी, आर्थिक, विपन्नता आदि। लेखिका को शरब पीनेवालों सक्त नफ़रत है। वे कहती है - शरब और आपसी झगड़ा यही इस समाज की सबसे बड़ी खराबी है। दलित समाज अछूत शूद्र वर्ण कहलाता थे। इस समाज के लोग स्वयं को वाल्मीकि कहकर गौरव का अनुभव करते थे। लेकिन अपनी सामाजिक बुराइयाँ नहीं छोड़ते। इन लोगों की छोटी सी दुनिया होती थी। इसमें ही वे खुश होते थे। कोई पंचायत में काम करता है तो, कोई डाकबंगले में, कोई अस्पताल में तो कोई स्कूल में परंतु इस प्रकार का काम करने में इन लोगों को संकोच नहीं होता था। अपने, बाप, दादा करते आए है इसलिए वे भी वही करते थे। कुछ लोग मैट्रिक, बी. ए पास करके अच्छी नौकरी न मिलने पर इसी प्रकार की

नौकरी करते थे । कुछ लोग ऐसे थे जो सुबह आठ बजे तक बिस्तर में पड़े रहते थे और अपना कार्य छोटे बच्चे पर सौपते थे । इसी कारण बच्चे पढ़ नहीं पाते थे । लेखिका को उन लोगों पर बहुत ग़ुस्सा आता था जो १२-१५ साल के बच्चे अपने साथ साफ सफाई का काम करने ले जाते थे और उन्हें वह काम करते देखकर उनके सहपाठी उनसे अछूआछूत का भेदभाव करते है। उनसे लड़ाई - झगड़े के साथ, नफरत का बुरा व्यवहार करते थे । शिक्षक भी उन्हें मारते थे, उनके मारपीट और अपमानपूर्ण कठोर व्यवहार भी उन्हें स्कूल में रहने नहीं देता था । वे गरीब होने के कारण किताबें कॉपियों खरीद नहीं पाते थे और उनके घर वाले घर की जरूरते और खर्च देखकर भी उनकी पढ़ाई रोक दी जाती थी । इसी कारण से भी वे पढ़ नहीं पाते थे ।

ऐसा ही हाल लड़कियों का भी होता था । शादी के बाद ससुराल में परिवार का खर्च उठाने के लिए वे उन्हें इस तरह की नौकरी में लगा दी जाती थी । बेटा भले ही नौकरी न करता हो लेकिन बहु को नौकरी में लगा दिया जाता था । बहु बाहर का काम भी करती थी, घर का भी पूरा काम करती थी -खाना पकाना, खिलाना, मांजना, धोना, सब करके बच्चों को भी संभालने की जिम्मेदारी भी निभाती थी । यह सब करके भी बहुओं कों पति की मार, सास की गालियाँ और ननदों के ताने मिलते थे । उस समय घर के लोग बहुओं के साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे । और वह चुप चाप सब सहती रहती थी । वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करती है कि - एक दो साल में शायद उसकी स्थिति बदले, या एक दो बच्चे हो जाने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेंगे, या बहूएँ आने के बाद स्थिति बदल जायेगी यह सोचते सोचते उनका पूरा जीवन निकल जाता था । उनके लोग अंधविश्वास को ज्यादा मानते थे जैसे बिल्ली ने

रास्ता काट दिया तो अशुभ, कौए ने पंख मार दिया तो अशुभ ऐसी अनेक बातें मानी जाती थी। किसी के शरीर में देव या भूत का आना भी विश्वास के साथ सच माना जाता था। लड़कियों की शादी १५ या १६ वर्ष की आयु में होती थी। लेखिका की भी शादी की बात हो रही थी। उनके पिताजी अच्छे वर के लिए शहर में जाते थे पसंद न आने पर वह शादी की बात टल जाती थी। उनके सगे सम्बनधी रिश्तेदार उनके माँ पिताजी से कहते थे -"कब तक लड़की को पढ़ाते रहोंगे? कब तक उसे बैठाकर रखोगे? ऐसे तो लड़की बूढ़ी हो जायेगी। उसके साथ के लड़कियों की शादी हो गयी और वे एक एक, दो दो बच्चों की माँ भी बन गयी हैं। तुम लोग लड़की की तरफ से आँखे बंद करके बैठ गये हो।"[११] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता, पृ.स.३३) ये लोग इससे आगे की सोच नहीं पाते हैं। बेटी का जन्म होते ही उसकी पढ़ाई की अपेक्षा, शादी की चिंता की जाती है। शादी और बच्चे जैसे उनके जीवन का लक्ष्य हो। ससुराल में भी घर का सारा काम उसी को करना पड़ता है। अधिकांश लड़कियों को अपने पति की मार, सास की गालियाँ और ननंदो के ताने मिलते रहते है। हर घर में झगड़ा दिखाई देता है। कभी भाई - भाई का, कभी सास - बहु का तो कभी ननंद - भौजाई का। कारण कोई भी हो हर पुरुष अपना गुस्सा अपनी पत्नी पर ही निकलता है।

इस प्रकार की परम्परा विचारधारा को तोडना आवश्यक है। तभी यह समाज नए विचारों को अपनाएगा और शिक्षा के प्रति जिज्ञासु रह कर आत्मनिर्भर बनेगा। युवा शिक्षित पीढ़ी की सहायता से लेखिका इस स्तिथि को बदलना चाहिए है।

'विचारभूमि'

इस कहानी में लेखिका ने दलित साहित्य में कदम किस तरह रखा है यह बात बताई है। जब नानी उसे बचपन में कहानियाँ सुनाती थी। और जब वह स्कूल में पाठ्य पुस्तकों में अनेक कहानियाँ पढ़ने लगी बाद में वह पाठ्यपुस्तकों कर अतिरिक्त पत्र - पत्रिकाओं और किताबों में छपी कहानियाँ पढ़ने लगी। पढ़ते समय वह हमेशा सोचती थी कि - कहानियाँ कैसे बन जाती है? कहानियों के पात्र कौन होते है? कहाँ से आते हैं I वह कहानी विषय में सोचती थी - कहानी यदि ऐसी न होकर ऐसी होती तो कैसा रहता? इस तरह अनेक बातें जिज्ञासा के रूप में, और कहानी सुनने या पढ़ने के बाद उनके मन -मस्तिष्क पर छायी रहती थी।

जब वह कॉलेज के छात्रों कों पाठ्य पुस्तक की कोई भी कहानी पढ़ाती थी तब उन्हें समझाती -"देखो, यह कहानी इस टेकनिक से लिखी गयी है। इसकी कथावस्तु मात्र इतनी है। इसे इस उदेश्य से लिखा गया है। कहानी लिखना सरल है। आप में से बहुत लोग ऐसी कहानी लिख सकते है। यदि आप लिखेंगे तो इससे अच्छी कहानी लिख सकेंगे?"[१२] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.३४) जब लेखिका बी. ए कर रही थी, फर्स्ट ईयर से फाइनल तक उन्हें हिंदी साहित्य प्रा. डोंगरे जी पढ़ते थे। उनके कविता सुनाने के तरीके और कहानी पढ़ाने की पद्धति ने साहित्य की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से खींचा था। जब लेखिका कक्षा आठवीं में पढ़ती थी, तब उनके छोटे भाई मोहन ने कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा था। व्रत रखने का आग्रह इसलिए भी अधिक था कि उसका जन्म भादों माह की कृष्ण पक्ष की जन्माष्टमी के दूसरे दिन

हुआ था। १२ वर्ष के मोहन ने जब पहली बार व्रत रखा, तब दिन के दो बजे तक उसकी हालत खराब होने लगी। उपवास का फलाहार लेने के बाद भी वह बार - बार कुछ खाने के लिए तड़प रहा था। उसकी उस तड़प और बेचैनी को देखकर उसी दिन, उसी समय चौदह वर्ष की आयु में उसने एक कहानी लिखी -'व्रत और व्रती '।

जब लेखिका ग्यारहवीं मैट्रिक में थी, उसने समाचार पत्र पढ़ा तो नहीं था, सिर्फ सुना था, सहेलियों के बीच बहुत चर्चा थी कि 'नयी दुनियाँ' समाचार पत्र में विज्ञापन छपा है- 'सवर्ण समाज के एक युवा नेता अछूत कन्या से विवाह करके, समाज के सामने जाति भेदभाव मिटाने का आदर्श रखना चाहते हैं। उनकी बस यही शर्त है, लड़की कम से कम मैट्रिक तक पढ़ी होनी चाहिए।' तब मन में अनेक विचार आए थे-हमसे जातिभेद माननेवाले क्या हमारे साथ रह सकते हैं, या हमें साथ रख सकते हैं? बीते दिनों की कई घटनाएँ स्मृति पटल पर बार-बार कौंधने लगी थीं। तब उसी साल 'सिलिया' कहानी लिखी थी। 'व्रत और व्रती' कहानी और 'सिलिया' कहानी लिखी थी तब वह नहीं जानती थी कि ये कहानियाँ दलित साहित्य की कहानियाँ हो सकती हैं।

१९७४ में विवाह के बाद वह नागपुर आयी। बी. एड करने बाद प्रकाश हाईस्कूल में शिक्षिका की नौकरी करने लगी। साहित्यिक कार्यक्रमों में जाने का भी अवसर मिलते रहे। महिला मुक्ति और समाज जागृति के कार्य करने के अवसर भी मिलते रहे। साहित्य गोष्ठीयों में जाने से हिंदी साहित्य और साहित्यकारों की अनेक बातों की जानकारी मिलती रही।

दलित साहित्य के सम्बन्ध में १९९३ में पहली बार ध्यान से सुना था कि यह क्या है और क्यों लिखा जा रहा है। 'अम्बेडकर-फुले विचार मंच' की ओर से डॉ. विमलकीर्ति ने नागपुर में

पहली बार 'फुले आंबेडकरवादी हिन्दी दलित लेखक साहित्य सम्मेलन' आयोजित किया था। इस सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में देहरादून से दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को बुलाया गया था और उद्घाटक के रूप में डॉ. महीपसिंह दिल्ली से आए थे। इसी सम्मेलन में बिहार (चन्द्रपुरा, बोकारों) के दलित साहित्यकार डॉ. दयानंद बटोही से भेट हुई। सम्मेलन में अनेक दलित साहित्यकारों और कार्यकर्ताओं के भाषण का प्रभाव मन मस्तिष्क पर हुआ। लेखिका ने पहली बार सोचा और समझा कि दलित साहित्य इस तरह इसलिए लिखा जा रहा है, क्योंकि दलितों पर हुए सदियों के अन्याय-शोषण और उनकी पीड़ा ही दलित साहित्य की पृष्ठभूमि है। दलित साहित्यकार अपनी व्यथा-कथा सम्पूर्ण दलित समाज की व्यथा-कथा के रूप में बेबाक होकर लिख रहे हैं और सम्पूर्ण समाज तक पहुंचा रहे हैं।

इस कार्यक्रम में उपस्थित नागपुर के दलित सामाजिक कार्यकर्ता भूतपूर्व पार्षद सोहनलाल ताम्बे जी आग्रह था 'हिंदी दलित साहित्यकार सम्मलेन ' में डॉ. महिपसिंह और ओमप्रकाश जी के सामने अपने विचार व्यक्त करें। ओमप्रकाश जी, और डॉ. दयानन्द बटोही जी ने अनेक दलित साहित्यकारों और दलित पत्रिकाओं का पता देकर परिचय दिया। इस प्रोत्साहन के साथ उत्साहित होकर १९९४ में काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो ' छापवाया। प्रथम काव्य संग्रह 'स्वाति बूँद और खारे मोती '१९९३ में छप चुका था।

'दलित महिला मुक्ति आंदोलन' से जुड़ी संस्थाओं के साथ काम करते हुए मैंने नारी की अस्मिता को नये रूप में देखा। साथ ही होने वाले अन्याय अत्याचार के विरोध में अपनी भावनाएं व्यक्त की – 'नारी की कमजोरी का कारण नारी स्वयं है, नारी स्वयं अपनी इस कमजोरी से मुक्त

हो ' – ये विचार मेरी रचनाओं में है। 'तुमने उसे कब पहचान'कविता संग्रह के रूप में मेरे विचार और भावनाएँ समाज तक पहुँचे है।

लेखिका कहती है – लिखना सरल है लेकिन उसे प्रकाशित करना और लोगों तक पहुँचाना कठिन है। इस कठिन काम को यथाशक्ति करने का प्रयत्न कर रही हूँ।

'टूटता वहम'

इस कहनी में सवर्ण और दलित जाति के शिक्षित के बीच की मानसिक दूर को प्रस्तुत किया गया है। आज देश इतना प्रगतिशील बना है। फिर भी जातिभेद और अस्पृशता की भावना प्रचलित है। जातिभेद मानने वालों का आचरण सदा ही इसके विपरीत दिखाई देता है I परंतु आज दलित भी इस जातिभेद के मकड़ी जाल को नहीं समझ रहे है, पहचान रहे है। वे सोच रहे है कि ''हम कुछ भी बन जाए, कुछ भी पा लें फिर भी जाति व्यवस्था का संरक्षण हिन्दू हमारे साथ हमेशा भेदभाव करेगा। हमारे साथ अन्याय करता रहेगा और हम धोखे की मुट्ठी में पड़कर सदियों की चक्की में दुःख, पीड़ा, तड़प और बेचैनी के साथ पीसते रहगे।

जो लोग कभी शुद्रो को छूने की कल्पना नहीं कर सकते थे, आज वे उनके साथ बैठकर भोजन करते है। हाथो में हाथ मिलाकर बातें करने लगे। यह बताने के लिए कि हम जाति भेद नहीं मानते। परंतु इसके पीछे सच क्या है? ये राज़ दलित पहचान रहे है। अब उनका वहम टूटता नज़र आता है। लेखिका जब नागपुर में शिक्षित के पद पर आती है, तो संस्था के व्यवस्थापक बहुत खुश होते है। स्कूल में कभी कोई कार्यक्रम होता तो बड़े - बड़े अतिथि और वक्ता आते

रहते है। व्यवस्थापक बाहर से आए। प्रत्येक व्यक्ति से लेखिका का परिचय कराते समय उनकी जाति के बारे में बताते है। जाति का बार -बार उल्लेख करने के पीछे उनके मकसद को लेखिका पहचान लेती है। एक बार लेखिका सभी सहयोगी प्राध्यापिकाओं को अपने घर खाने पर बुलाती है तो तब दो - तीन मैडम कहने लगती है कि “अरे नहीं, हमारा तो उपवास है हम नहीं आयेंगे।” तभी कोई उदारमना कहती है “रहने दो न मैडम, आप क्यों तकलीफ करती हो l जब हमें आना होगा हम खुद आ जायेंगे, बिना बुलायें आयेंगे।”[१३] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.४३)

लेखिका घर सिर्फ चार प्राध्यापिकाएँ आती है। लेखिका को लगता था कि जैसे प्रत्येक के घर दावन में ८-९ महिलाएं आती थी। अपने घर में अवश्य ८-९ तो जरूर आयेंगे। उसी हिसाब से वह सबके लिए खाना बनाती है। लेकिन सिर्फ चार ही आते है तब लेखिका को बुरा लगता है। उनमें से दो प्राध्यापिकाएं अनुसूचित जाति की होती है।

भोजन के लिए सिर्फ दो महिलाएं बैठी थी। उनमें से एक का व्रत था। और और एक ने कहा कि “आपको तो पता है, आज चतुर्थी है, मेरा व्रत है आप मुझे बस एक कप दूध दे दो। खाना मैं फिर कभी आपके घर खाऊंगी।”[१४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम -पृ.स.४४) तब लेखिका देखती रह गयी। चतुर्थी है, यह लेखिका ने नहीं देखा था लेकिन जो महिला डेढ़ - दो घंटो से साथ है और उससे सभी प्रकार की बातें होती रही मगर इस बीच उसने एक बार भी अपने व्रत या चतुर्थी के विषय में नहीं बताया था। वह ब्रह्मण है , व्रत, पूजा अधिक करती है - सबको मालूम था मगर उसका इस तरह केवल नाममात्र के लिए घर आना पुरे समय चुप्पी साधे

रहना और भोजन के समय कहना मेरा आज चतुर्थी है। लेखिका को तब मन लगा, ‘ यह मेरे घर के भोजन का बहिष्कार तो नहीं?’

ऐसी ही और एक घटना उन्होंने बताई थी की, वह जिस कालोनी में रहती थी, वहाँ एक प्लाट उनको खरीदना था। परंतु इतने पैसे उनके पास नहीं थे। तब वह पति के सहयोगी शिक्षक शर्माजी के साथ आधा - आधा प्लाट खरीदने का सोचती है। लेखिका के पति शर्मा जी से कहा -“ भाई आप भी प्लाट खरीदना चाहते है और हम भी। इतना अच्छा प्लाट मिल रहा है। ३००० वर्ग फुट का प्लाट हम और आप मिलकर आधा - आधा खरीद लेंगे। साठ हजार रुपयों का इंतजाम हम कर लेते है।” शर्मा जी कुछ सोचकर बोले - “ पत्नी से पूछ कर आपको बताता हूँ।”[१५](डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.४५)

लेखिका और उनका पति शर्मा जी का उत्तर का इंतजार करते रहे। इस तरह एक माह बीत गया। शर्मा जी का कोई उत्तर ही नहीं आया था। अतः वह प्लाट दूसरा कोई खरीद लेता है। आठ वर्ष बाद पति महोदय ने यह बातें अपने एक सहयोगी शिक्षक मित्र को बताया “ शर्मा जी ने देर कर दी, नहीं तो इतना बढ़िया प्लाट हम दोनों तभी खरीद लेते और अब उस पर दोनों मिलकर अपने अपने मकान बनाते।” तभी मित्र ठाकुर अपनापन जताते हुए धीरे से बोले “भैया, बताना मत, कहाँ के चक्कर में थे? क्या शर्मा तुम्हारे साथ प्लाट खरीदकर और मकान बनाकर तुम्हारे पड़ोस में रहते? यह तो उसने पहले दिन ही सोच लिया था कि तुम्हारे साथ प्लाट नहीं खरीदेगा। भले ही जिंदगी भर किराये के मकान में रहेगा मगर अच्छा मकान मिले तब भी तुम्हारे पड़ोस में नहीं लेगा। उसने यह बात कुछ लोगों को तभी बता दी थी। आप भी बड़े भोले हो, उसके झांसे

में आ गये और महीना भर उसकी राह देखते रहे।"[१६] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.४५)

जब भी हम उस प्लाट के पास से गुजरते है l उस पर बने मकान को देखकर लगता है हम भी ऐसा ही मकान बना लेते यदि हमें धोखे में न रखा गया होता। वे सोच रहे है कि हम कुछ भी बन जायें, कुछ भी पा लें फिर भी जाति व्यवस्था का संरक्षक हिन्दू धर्म हमारे साथ हमेशा भेदभाव करेगा। हमारे साथ अन्याय करता रहेगा और हम धोखे की मुट्ठी में पड़कर, सदियों की चक्की में दुःख, पीड़ा, वेदना, तड़प और बेचैनी के साथ पीसते रहेंगे! जब तक हमारा वहम नहीं टूटेगा हम इस अन्याय को सहते रहेंगे! इस तरह के भ्रमपूर्ण लोक -व्यवहार में अपने लिए मान-सम्मान और अपने अस्तित्व की पहचान खोजते रहेंगे!!

अतः दलितों को हिन्दुओ के जातिभेद के इरादे को पहचाकर अपने मान - सम्मान और अस्तित्व कि पहचान करनी आवश्यक है। इस प्रकार लेखिका ने अपने अनुभवों को बताने की कोशिश की है। इसमें दलितों के मकानों की समस्याओं, भेदभाव की समस्या, खान -पान का परहेज आदि समस्याओं का चित्रण किया है। यहाँ समानता के नाम पर झूठे भुलावे का चित्रण किया है जो मन को अधिक पीड़ित कर विचार करने को विवश करता है।

'मंदिर का लाभ'

प्रस्तुत कहनी में दलितों की हिन्दू धर्म और भगवान में होनेवाली आस्था की तटस्थ मीमांसा की है। वे मंदिर तो बना लेते है परंतु अपने समाज की स्थिति को नहीं सुधारते है। इसमें

एक ही भगवान को माननेवाले सवर्ण और अछूतों के बीच जातिभेद और छुआ- छूत की भावना का चित्रण किया है ।

इसमें नानी एक रूढ़िवादी नारी है । उसे बेटा न होने के कारण वह अपनी बहन के बेटे के यहाँ रहती है न कि अपनी बेटी के पास । वह मानती है कि उद्धार तो बेटों से ही होता है । अतः उसकी निगरानी में एक - एक राधा- कृष्ण मंदिर बनाया जाता है । मंदिर का सारा खर्च नानी करती है । नानी के पास मेहनत की कमाई का रूपया था । चांदी के गहने, हंसली, बाकडे, कड़ी, करधोना, हाथों के कंगन, बंगड़ी, गजरे न जाने क्या क्या थे । नानी हमेशा सोने के टाप्स और सोने की बड़ी लौंग पहनती थी । पुतली हार, अंगूठीयाँ आदि छिपा कर रखती थी सोने - चांदी की सभी चीजों को और नोटों को वह एक बर्तन में रखकर घर के भीतर जमीन में गड़ा देती थी । जरुरत पड़ने वह निकल देती थी । और वह वही पैसे मंदिर बनवाने में खर्च करती है । बहन का छोटा बेटा बार - बार यह आश्वासन दे रहा था की वह भगत जी बन जायेगा, जीवन भर भगवान की पूजा पाठ करता रहेगा, उसका पूरा परिवार भगवान की सेवा करेगा - इस सब कारणों से मंदिर वहीं बनाया गया था । गाँव के बहुत लोग कह रहे थे “ छौआ (सौआ - सावित्री का अपभ्रश) ने मंदिर बनाकर बहुत बड़ा काम किया है । मंदिर रहने से हम भी धर्म - कर्म करेंगे जिससे हमारा जीवन सुधरेगा । मंदिर के साथ सब छौआ माँ को याद रखेंगे क्योंकि मंदिर तो कई पीढ़ियों के लिए होते है ।”[१७] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.४९)

गाँव के लोग यह नहीं जानते थे कि मंदिर में मूर्ति की स्थापना कैसे की जाती है । उनको यह पता था कि यह काम पंडित - पुजारी के सिवा और कोई नहीं कर सकता । इसलिए नानी,

नानी की बहन और हरि मामा पंडित जी को बुलाने जाते है। गाँधी जी ने अछूतोद्धार आन्दोलन चलाया था और अछूत जातियों को हरिजन नाम दिया था। तब से, बामन-बनियों के दिल में इनके प्रति दया भाव और सहानुभूति की भावना बढ़ गयी थी। मध्यप्रदेश के गाँव-गाँव और घर-घर में गांधी जी के प्रति श्रद्धा और विश्वास था। इसके साथ ही दलितों के मन में भी यह भाव जाग उठा था कि हम भी भगवान के जन है, हम भी भगवान की पूजा कर सकते हैं, मंदिर भी बना सकते हैं। भगवान की मूर्ति स्थापना के लिए ब्राह्मण पुजारी हमारे घर जरूर आयेंगे। फिर यह तो भगवान का ही काम है। पुजारी ने आने से इंकार करते हुए कहा की “ तुम लोग कुछ भी कर, मैं न तो तुम्हारे घर जाऊंगा और न तुम्हारे मंदिर में जाऊंगा और न ही तुम्हारे भगवान की मूर्ति को हाथ लगाऊंगा।”[१८] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.४९)

सभी लोग दूसरे पंडित और पूजा करने वाले ब्रह्मणों को बुलाने के लिए गये कोई भी आने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने ने स्पष्टीकरण देते हुये कहा -“शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा है कि तुम्हारी जाति के लोग मंदिर बनवाये और भगवान की स्थापना करें? तुम लोगों ने बड़ा पाप किया है, भगवान को भी अपवित्र कर दिया। हम ऐसे काम में तुम्हारा साथ नहीं दे सकते। तुमने सोच कैसे लिया कि हम तुम्हारे घर और तुम्हारे मंदिर में आकर पूजा करेंगे? राम-राम, हे भगवान, बहुत पाप बढ़ गये हैं, इसी से तुम्हारी मति मारी गयी। तुम्हारा तुम जानो, हमारे आने की राह मत देखो। जो दिखता है, जो समझ में आता है खुद कर लो।”[१९] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स ५०)

मंदिर में मूर्ति की स्थापना करने के लिए कोई पंडित या पुजारी नहीं आता है। नानी के कहने पर एक पंडित सामान्य पूजा विधि कर भगवान की स्थापना करता है। नानी की बहन का बेटा हर रोज भगवान की पूजा करता है। कुछ दिन पश्चात नानी कैंसर से पीड़ित हो जाती। खाना, पीना बंद हो जाता है। फिर भी नानी अपनी बेटी के पास नहीं जाती है। मृत्यु के बाद उसकी सारी संपत्ति उसके बहन के बेटा हड़प लेता है। उसी दिन से सबके व्यवहार बदल जाते जाते है। नानी की धन - सम्पति, सोना - चांदी के विषय में पूछने पर बताया गया, सब कुछ मंदिर में खर्च हो गया, कुछ भी नहीं बचा।

अगर नानी अपना सारा रूपया वाल्मीकि समाज सुधार में लगाती तो समाज का बहुत भला हो जाता। मंदिर केवल एक वस्तू बनकर उपेक्षित रहता है। उनके समाज के लिए कोई लाभ नहीं होता।

इस कहनी में धर्माधता के प्रति विरोध दिखाया गया है। दलित समाज के लोग अपनी उन्नति की गति भगवन के भरोसे छोड़ देते है। वे ये नहीं जानते कि जब तक अपनी उन्नति के विषय में हम खुद नहीं सोचेंगे तब तक कोई भगवान या कोई मंदिर लाभ नहीं दे सकता।

'सिलिया'

यह कहानी एक दलित कन्या की है जो आत्मविश्वास के साथ पढ़ाई कर अपने समाज को सुधारता चाहती है। इसमें छुआ-छूत, असमानता की भावना आदि समस्याओं को उठाया है। एक दिन 'नई दुनिया' अख़बार में एक विज्ञापन छापता है -"शूद्र वर्ण की वधु चाहिए।" मध्य

प्रदेश को भोपाल के जाने - माने युवा नेता सेठी जी अछूत कन्या से विवाह करके एक आदर्श निमार्ण करना चाहते है। सभी सिलिया की माँ को सलाह देते है। परंतु सिलिया की माँ कहती है -"नहीं भैया, यह सब बड़े लोगों के चोचले है। आज समाज को दिखाने के लिए हमारी बेटी से शादी कर लेंगे और छोड़ दिया तो हम गरीब लोग, उनका क्या कर लेंगे। अपने इज्जत अपनी समाज में रहकर भी हो सकती है। उनकी दिखावे की चार की इज्जत हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी, न ही हमारे घर की रह जाएगी। न इधर की न उधर की हमसे दूर कर दी जाएगी। हम उसको खूब पढ़ाएंगे, लिखाएंगे उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज्यादा मान- सम्मान वह खुद पा लेगी अपनी किस्मत वह खुद बना लेगी।"[२०] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.५५)

सिलिया आत्मविश्वास के साथ अपनी पढ़ाई करती है। उसे सभी गुरूजनों से मान -सम्मान मिलता है। परंतु उसे बचपन की बातें याद आती है कि जब उसकी मामी की बेटी मालती ने कुएँ का पानी लिया था; तो मामी ने उसे कितना मारा था। और चिल्लाकर कह रही थी "... क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएँ से पानी भर सके है? क्यों चढ़ी तू कुएँ पर? क्यों रस्सी बाल्टी को हाथ लगाई?" सिलिया मामी को शांत देखकर कहती है "मामी, मैंने मालती को मना किया था मगर वह मानी ही नहीं। कहने लगी -जीजी प्यास लगी है, पानी पियेंगे। मैंने कहा था " कोई देख लेगा, तो वह कहने लगी गरमी की भरी दोपहरी में कौन देखते आयेगा बाजार से यहाँ तक दौड़ते आए है, प्यास के मारे दम निकल रहा है।"[२१] (डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.५६)

वह जब पाँचवी कक्षा में थी तो टूर्नामेंट में उसने भाग लिया था। टूर्नामेंट जल्दी खत्म होने के कारण वह अपनी सेहली हेमलता के बहन के घर जाती है। हेमलता की मौसी ने सिलिया की जाति का नाम सुनने के बाद उसे पानी तक नहीं देती है। मौसी जानती थी सिलिया को प्यास लगी थी उसकी जाति के बारे सुनते ही पानी का गलास वापस ले जाती है। सिलिया इन बातों पर बहुत विचार करती है। उसके मन में अनेक नए विचार आते रहते है। यह भी प्रश्न आता है पानी माँगने पर क्या वह देने से इंकार कर देती?

वह सोचती - 'आखिर मालती ने ऐसा कौसा सा जुर्म किया था? प्यास लगी, पानी निकालकर पी लिया l'...फिर वह सोचती है हेमलता की मौसी से वह पानी क्यों नहीं ले सकी थी?

उसे छुआछूत, जातिभेद, सेठ जी महाशय का ढोग अच्छा नहीं लगता है सिलिया मन ही दृढ़ संकल्प करती " वह बहुत आगे तक पढ़ूंगी, पढ़ती रहूँगी। उन सभी परम्पराओं के उन आधारभूत मूल कारणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपकी ऊँचा साबित करके रहेंगी। किसी के सामने झुकूंगी नहीं, न ही कभी अपना अपमान सहन करूंगी...."[२२] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.५९)

वह आगे पढ़ - लिखकर स्वयं को बहुत ऊँचा साबित करती है। वह अपने समाज को उन्नति की ओर ले जाने के लिए प्रयास करती है l वह समाज से जातिभेद मिटाना चाहती है।

‘मुझे जवाब देना है’

इस कहानी में बताया है कि शिक्षित दलितों का काम केवल अपने घर की साज-सज्जा करने तक सीमित नहीं है। इससे आगे कुछ करना है। अच्छा खाना, अच्छा पहनना, इतना सीमित उनको होना नहीं चाहिए। बल्कि समाज की प्रगति में इनका योगदान भी आवश्यक है।

लेखिका के घर उनके पति के मित्र एक मीटिंग के सिलसिले में आते हैं। इससे पहले वे उनको एक अधिवेशन में मिले थे। उनकी इच्छा है कि लेखिका इस अधिवेशन के समापन के समय खुले चर्चा सत्र में हिस्सा लें। विद्वानों के सामने कुछ ऐसे प्रश्न रखें कि लोग उनकी बुद्धि-विवेक को मान्यता प्रदान करें। भाई साहब की यह भी इच्छा है कि लेखिका मीटिंग में अपने विचार समाज के सामने रखें।

वे महिला प्रतिनिधि के रूप में कुछ बोलें। पर वे अपना सारा समय नाश्ता बनाने में लगाती हैं। मीटिंग की कुछ भी बातें वे नहीं सुनती हैं। फिर भी अनगढ़ रूप में अपने विचार रखती हैं। इससे उसका समाधान नहीं होता। उसके मन में ग्लानि निर्माण होती हैं कि यह महँगा फ्लैट यह घर की साज-सज्जा सब बेकार है। जीवन का उद्देश्य घर सजाना, सुख भोग करना, मात्र धन कमाना नहीं है। इतना धन इस व्यर्थ साज-सज्जा पर क्यों ख़र्च करें। इसका उपयोग समाज के लिए हो सकता है। हमें कुछ करना है। पूरे समाज के लिए, मानव समाज के लिए, साधारण जीवन का मूल्य समझना है। आदर्शों की मात्र कल्पना करने से तो कुछ भी नहीं हो सकता। अन्याय उन आँखों के सामने मैं गुनहगार क्यों साबित होती।

इस प्रकार कहानी में बताया है कि संपन्न शिक्षित दलित, अपने समाज से दूर रहना चाहता है जो कि ग़लत है। दलित समाज का शिक्षित और संपन्न वर्ग अपने समाज की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहा है। समाज की प्रगति में उनका भी योगदान रहा है।

'नयी राह की खोज'

यह कहानी उस युवक की है जो बुद्धिमान होते हुए भी घर में सभी अनपढ़ होने के कारण तथा आर्थिक विपन्नता के कारण कुछ नहीं कर पाता है। माँ-बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने से पहले यह नहीं सोचते कि पढ़ाई के बाद बेटा क्या करेगा? परिणाम स्वरूप बच्चे होशियार होकर भी मज़दूरी करते थे।

रामचंद्र का बेटा लालचंद बहुत बुद्धिमान है। इसीलिए उसे कॉन्वेंट स्कूल में भेजा गया था। घर में सभी कहते थे बेटा अंग्रेजी की चार क्लास पढ़ गया लेकिन आगे की पढ़ाई के इतना खर्च नहीं उठया जायेगा। घर में घंटो बहस होती थी। तब माँ कहती -"और भी तो बच्चे है अपने,क्या उन्हें जहर दे दें? आगे की कठिन पढ़ाई है, हिंदी में ही पढ़ लेगा।" दादा कहते -"कारपोरेशन की स्कूल में डाल दो, कितना पैसा खर्च करोगे? पैसे वालों की बात अलग है, हम ठहरे गरीब मजदूर। हमारे बीच से भी कभी कोई सॉब बना है?" दादी कहती है "अरे, आगे चलकर तो बाप का काम ही करना है क्या जरूरत है अंग्रेजी पढ़ाई लिखाई की। सॉब बाबू की नौकरी हम लोगों के नसीब में कहाँ होती है?"[२३] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.६६) घर का वातावरण तथा

आर्थिक अभाव के कारण लालचंद आगे पढ़ नहीं पाता था। उसे कारपोरेशन की हिंदी प्राइमरी स्कूल में भेजा गया। उसे हिंदी अच्छी तरह से नहीं आती है।

उनकी पढ़ाई का हाल देखकर शिक्षक पीटते थे। शिक्षकों का गुस्सा देखकर लालू स्कूल से भाग जाता। बाप का अरमान था,'बेटा अंग्रेजी नहीं पढ़ सका, कम से कम हिंदी माध्यम से मैट्रिक कर ले। कहीं न कहीं अच्छी नौकरी मिल ही जायेगी।' घर भी नहीं जा सकता बाप के डर से। लालचंद कमाने लायक़ होता है तो घर के सभी बड़े उसे गालियाँ देते और कहते- "कुछ करो, कुछ कमाओ, कब तक बैठकर दूसरों की कमाई खाओगे।"[२४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.६६)

रामचंद्र अपने समाज के जागृत लोगों के साथ मिलकर एक 'जागरूक' नामक सामाजिक संस्था द्वारा लोगों के मन में शिक्षा के प्रति जागरूकता निर्माण करने का प्रयास करता है। रामचन्द अपने साथ के लोगों से इस विषय में सोच-विचार के साथ चर्चा करता- " सन्तान हमारी तरह दूसरों की गुलामी करे-ऐसा नहीं होना चाहिए।" वह समाज में चेतना जगाना चाहता था, उनके सोये हुए आत्मसम्मान को जगाने के लिये वह बार-बार कहता है- "यह भी कोई जिन्दगी है? हाथ बांधे, सिर झुकाये, सबकी हाँ जी, हाँ जी करते रहो....। वही जानवरों जैसा जीवन, गन्दगी को साफ करते रहो और गंदगी में पड़े रहो.... यह कब तक चलेगा? कहीं न कहीं तो इसकी रोक होनी चाहिए!"[२५] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम , पृ.स.६७)

रामचंद्र और उनकी 'जागरूक' संस्था के लोगों की बातों का असर समाज के लोगों पर होने लगा। कई लड़के -लड़कियाँ ने अच्छे नंबर लेकर मैट्रिक पास किया था। कई लड़के और

लड़कियाँ कॉलेज में पढ़ने जाने लगे थे। लेकिन बच्चे पढ़ - लिख रहे थे, मैट्रिक और ग्रेजुएट भी हो रहे थे मगर उन्हें अच्छी नौकरी नहीं मिल रही थी। पढ़े -लिख जाने के बाद उन्हें स्वीपर की नौकरी करने में शर्म आ जाती थी। इसका परिणाम यह हो रहा था कि समाज में बेरोजगारी बढ़ती जा रही थी। पढ़े लिखे बच्चे न तो मेहनत मजदूर कर पाते थे, न अपनी पारम्पारिक नौकरी और न ही उन्हें अच्छी नौकरी मिल पाती थी।

यदि घर का आर्थिक परिस्थिति ज्यादा ही खराब हो, जिम्मेदारियाँ अधिक हो तब माँ बाप और रिश्तेदार के दबाव में आकर कभी कभी मैट्रिक, बी. ए और एम. ए तक पढ़े लड़के लड़कियाँ भी गाँव शहर के गली -मोहल्ले की सड़को का कचरा झड़ने पर मजबूर हो जाते थे। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ उन्हें मजबूर कर देती थीं। तब खुद को समझाने के लिए और दूसरों को समझाने के लिए कुछ रटी रटाई बातें वे बार बार दोहरा देते थे- "कोई चोरी तो नहीं कर रहे हैं, जो काम बाप-दादाओं के जमाने से चला आ रहा है उसे करने में कैसी शर्म? बीबी बच्चों का पालन करना है। कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। हमारे बच्चे भूखे रहें और दूसरों के दरवाजे भीख मांगे उससे अच्छा हमारा यह काम कौन सा बुरा है।"

रिक्शा चलना, हाथ ठेला चलाना, छोटे-मोटे धन्धे जैसे-सब्जी बेचना, फल बेचना, पान ठेला चलाना आदि इस समाज के मानस में नहीं रहा। जातिभेद और छुआछूत इसका कारण रहा है।

रामचंद्र की छोटी बहन बुधिया का बेटा मैट्रिक तक पढ़ा था। एक दो साल पोलिटेक्निक भी पढ़ा था लेकिन खर्च के अभाव में और किताब, कॉपी और ट्यूशन के अभाव में कमल आगे नहीं पढ़

सका । तीन-चार साल से वह बेरोजगार था । लोग बीस-बीस हजार रुपये देकर, ऑफिस के चक्कर लगा कर और साहबों से मिन्नतें कर सफाई कर्मचारी की नौकरी मांग रहे थे । विधवा गरीब बुधिया के पास इतना रुपया नहीं था। उसकी परेशानी और जरूरत को देखकर एक आदमी ने उसे विश्वास दिलाया कि "मुझे दस हजार रूपये दो, बम्बई में मेरी बहुत पहचान है मैं तुम्हारे बेटे को बाबू की नौकरी लगवा दूंगा ।" बुधिया ने अपने गहने बेचकर और उधार लेकर दस हजार रूपये उस अनजान आदमी को दे दिये थे। उस आदमी ने कहा था- "ये रुपये लेकर मैं बड़े साहब के पास जा रहा हूँ। काम बनते ही में तुम्हे चिट्ठी लिखूंगा और कमल को अपने साथ बम्बई ले जाकर वहाँ उसे नौकरी पर लगवाऊँगा ।" उन्होंने अपना पता लिखकर दिया था । लेकिन वह झूठा पता देकर जाता है। बुधिया बहुत दुखी हो जाती है उस पर रहम करके मैट्रिक पास कमल को एवजी कार्ड देता है। जब कोई सफाई कर्मचारी छुट्टी पर जाता या अपनी ड्यूटी पर नहीं आता तब उसकी जगह दो – चार दिन कमल को काम बता दिया जाता है । अपनी किस्सम और देने वालों का एहसास मानकर कमल खुशी – खुशी यह काम करता है।

यह सब देखकर रामचन्द बहुत दुखी हो गया है, 'जागरूक' संस्था के लोग अपने समाज के भविष्य के लिए फिर से विचार करने लगे- "भैया, पढ़ाई लिखाई यह तो नहीं कहती कि भूखे मरो या चोरी करो । आजकल फोकट में कोई भीख भी नहीं देता। ऐसे में हमारे बच्चे क्या करेंगे? केवल पढ़ाई लिखाई से हमारी समस्या हल नहीं होगी । बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बाद उन्हें काम देने की, उनकी नौकरी की व्यवस्था भी हमको ही करना पड़ेगा तब कहीं हमारी समस्या सुलझ सकेगी।"[२६] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.७०)

लालचंद भी इस संस्था द्वारा अपने-अपने समाज के लोगों में जागृति निर्माण करके अनेक व्यवसाय शुरू करता है और दलित समाज की अनेक समस्याओं को सुलझाता है। लालचंद के बेटे और बेटियाँ कालेज में जाने लगते हैं। वह सोचता है कि अपने समाज के पढ़े लिखे बच्चों को अपना पैतृक या परंपरावादी काम नहीं करने देंगे। यह उनका और उसके साथियों का दृढ़ निश्चय बन गया था। ये लोग लड़कियों को भी सम्मान के साथ उनके पैरों पर खड़ा देखना चाहते थे, ताकि भविष्य में कभी मजदूर होकर वे यह काम न करने लगें।

'जागरूक' संस्था ने विशाल रूप ले लिया था –'अखिल भारतीय वाल्मीकि जागरूक समाज' संस्था। इस संस्था के अंतगर्त वाल्मीकि समाज की एक उद्योगी संस्था बनाई जा रही है – पिछड़े समाज को उनकी उन्नति और विकास के लिए दी जाने वाली सरकारी राशि को लेकर इस संस्था के माध्यम से अनेक उद्योग डाले जायेंगे। इसीलिए वे अनेक संस्थाओं का निर्माण करते हैं। इस संस्थाओं में अनेक बेरोज़गारों को उनकी योग्यता के अनुसार काम दिया जाता है।

इस प्रकार दलित समाज के लोगों ने अपने समाज में जनजागृति निर्माण करके समाज को आत्मनिर्भरता और सम्मान की ओर बढ़ाया है। उन्होंने एक नयी राह की खोज की है। अगर सभी लोग इसी राह पर चलेंगे तो समाज उन्नति कर सकता है।

इस कहानी में दलित समाज की स्थिति शिक्षा की समस्या, नौकरी की समस्या और सामाजिक प्रगति की समस्याओं को उठाया है। इसमें परंपरागत सफ़ाई के व्यवसाय को छोड़कर नयी पीढ़ी अच्छे, सम्मानित व्यवसाय और नौकरी करें इस बात का संदेश दिया गया है। लेखिका ने दलितों को नई दिशा दिखाने का प्रयास किया है।

‘व्रत और व्रती’

यह कहानी उस अभाव ग्रस्त युवक की है जो अपने परिवार से दूर दिल्ली जैसे बड़े शहर में नौकरी के लिए दर-दर भटकता है। इस कहानी में धर्म के आडंबरों की समस्याओं को उठाया है। इसमें जो धर्मपाल है, वह अपने दुःख दूर करने तथा भगवान की कृपा हो इसीलिए भगवान का व्रत करता है। वह पूर्ण मनोयोग से गणेश जी की पूजा करता है। वह कड़ी सर्दी में सुबह पाँच बजे से एकाग्रता से भगवान का ध्यान करता है। परंतु उसे भगवान के दर्शन नहीं होते हैं। वह बीमार मात्र पड़ जाता था। दूसरी बार जन्माष्टमी के दिन भगवान श्रीकृष्ण का व्रत करता है। दिनभर भूखा रह कर वह उपवास करता है। वह कहता है- मैं आज किसी भी तरह से अपना संकल्प टूटने नहीं दूंगा। मुझे भगवान से मदद चाहिए और भगवान तभी मदद करेंगे जबकि उनका व्रत नियम के अनुसार समय पर पूर्ण किया जाए।

दोपहर से उसकी हालत बिगड़ने लगती है और कई बार चाय पीने के बाद भी वह कुछ खाने के लिए तड़पता है। शाम को पूजा के बाद खाना खाता है। परंतु ज़्यादा खाने से सब अगल पड़ता है। उसे खाली पेट सोना पड़ता है। (शाम को पूजा के बाद खाना) अतं में वह संकल्प करता है कि "किसी देवता के नाम से व्रत, उपवास नहीं करेगा। मेहनत और कमाई से अपना पेट भरना पड़ेगा। इस भागती मशीनी ज़िंदगी मे अपने पेट की आग बुझाने का इतंज़ाम स्वयं ही करना पड़ेगा। इस कहानी में धर्म के आडंबरों पर व्यंग्य किया है।

‘धूप से भी बड़ा’

इस कहानी में जातिभेद का चित्रण है । सुनील रोमा से शादी करके अपने बड़प्पन का परिचय देता है । रोमा सुशिक्षित लड़की होने पर भी जातिभेद को मानती है । इसी जातीयता की भावना के कारण वह सच्चे प्रेम को पहचान नहीं पाती है । रोमा एक स्वतंत्र विचारवाली लड़की है । वह उच्च वर्गीय बड़े अधिकारी की इकलौती संतान होने के कारण वैभवपूर्ण और उन्मुक्त वातावरण में पली है । बी.ए फायनल में पहुँचकर वह अपने सहपाठी सुंदर खिश्चन बंटी से प्रेम करती है । दोनों मिलकर घरवालों का विद्रोह सहन करते हुए कोर्ट मैरिज करते हैं । शादी के बाद बंटी रोमा से दूर हो जाता है । वह शराब के नशे में मस्त रहता है । रोमा उसे सही रास्ते पर लाने की कोशिश करती है। परंतु बंटी सुधरता नहीं है । रोमा को अपने किए पर पछतावा होता है ।

रोमा सुनील की आँखों में बरसों से उसके प्रति प्रेम का भाव देखती है । फिर भी वह उसके प्रेम को कभी महत्वपूर्ण नहीं मानती है । सुनील रोमा से बहुत प्रेम करता है । जब रोमा की शादी बंटी से होती है तो वह शादी न करने का फैसला करता है । रोमा सुनील को इसीलिए महत्व नहीं देती कि वह पिछड़े वर्ग का है । वह सोचती है कि सुनील डॉक्टर है, परंतु शूद्र ही है । बंटी को तलाक़ देकर वह मायके आती है। सुनील के प्रति उसके विचार बदलते रहते हैं । वह उससे प्रेम करने लगती है । सुनील भी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है । रोमा इस पर बहुत सोचती है। बहुत सोचने के बाद वह शादी के लिए तैयार हो जाती है । दोनों कानूनी विवाह बंधन में बंधते हैं।

सुनील के घरवालों का प्रेम देखकर वह भाव विभोर हो जाती है । वह एक समझदार गृहिणी बनती है । उसे अपने वहम पर अफ़सोस होता है कि वह जातिवादी भावना के कारण सुनील के गुणों

को देख नहीं पायी थी। अतं में वह सोचती है कि- "निश्चित ही सुनील और उसका परिवार, सुनील का पूरा समाज सम्मान योग्य है। सुनील का दिल सचमुच बड़ा है। सुरज से अधिक जीवनदायी, धूप से अधिक प्रकाशमान उसके विचार हैं। उसकी बराबरी वर्ण की उच्चता, जाति की श्रेष्ठता नहीं कर सकती। जिसके विचार ऊँचे हैं वह जाती धर्म से ऊपर है। सबसे श्रेष्ठ और महान है।" इस प्रकार यह कहानी सवर्णों की मानसिकता जातिभेद की भावना प्रस्तुत करती है। छोटी जाति के लोग छोटे नहीं है। वे धूप से भी बड़े होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला जी ने इस कहानी संग्रह में दलित लोगों के एक अलग माहौल को हमारे सामने प्रस्तत किया है। इस कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ प्रभावशाली हैं। झरोखें, टूटता वहम, मेरा समाज, और मंदिर का लाभ कहानियाँ आत्मकथात्मक हैं। अपने भाव-विचार, जीवन की घटनाएँ और अनुभवों को लेखिका ने इन कहानियों में चित्रित किया है।

संदर्भ

१.डॉ. सुशीला टाकभौरे – टुटता वहम, प्रकाशन अनिरुद्ध बुक्स १९, टैगोर, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली 110033, संस्करण -2012,

- पृ. स.१५

२. वही - पृ.स.१६

३. वही -पृ.स.१७

४. वही - पृ.स.१९

५. वही - पृ.स.२०

६. वही - पृ.स.२१

७. वही -पृ.स.२२

८. वही - पृ.स.२७

९. वही - पृ.स.२७

१०. वही -पृ.स.२८

११. वही - पृ.स.३३

१२. वही - पृ.स.३४

१३. वही - पृ.स.४३

१४. वही -पृ.स.४४

१५. वही -पृ.स. ४५

१६. वही- पृ.स.४५

१७. वही -पृ.स.४९

१८. वही- पृ.स.४९

१९. वही -पृ.स.५०

२०. वही- पृ. स.५५

२१. वही - पृ.स.५६

२२. वही -पृ.स.५९

२३. वही - पृ. ६६

२४. वही- पृ.स.६६

२५. वही- पृ.स.६७

२६. वही -पृ.स.७०

चतुर्थ अध्याय

डॉ. सुशीला टाकभौरे की कहानी संग्रह में अभिव्यक्त दलित विमर्श

प्रस्तावना

सुशीला टाकभौरे की कहानियां दलित समाज के साथ-साथ उनके जीवन के अनुभवों को भी प्रकट करती हैं। वे अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में दलितों के अनुभवों, और उनकी संघर्षों को उजागर करती है। सुशीला जी की कहानियों में दलित विमर्श का मुख्य ध्येय उनके सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझना है। उनकी कहानियां दलितों के जीवन की जटिलताओं को उजागर करती हैं और उनकी वास्तविकता को दर्शाती हैं। उनकी कहानियां दलितों के प्रति समाज की दृष्टि को बदलने और उन्हें समाज में सम्मान दिलाने का संदेश देती हैं।

उनकी कहानियों में दलित विमर्श का प्रमुख विषय गरीबी, उत्पीड़न, समाज में समानता की मांग और आत्मसमर्पण है। वे अपने किरदारों के माध्यम से उन अन्यायों का विरोध करते हैं और समाज को संवेदनशील करते हैं। उनकी कहानियां आम दर्शकों को दलित समाज के अनुभवों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाने में मदद करती हैं।

उनकी कहानियां दलित विमर्श को न केवल समझाती हैं, बल्कि उन्होंने इसे साहित्यिक माध्यम के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का एक साधन भी बनाया है। उनके काम में विविधता और आलोचनात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है, जिससे दर्शकों को दलित समुदाय के अनुभवों को विशेष रूप से समझने का मौका मिलता है।

अंत में, सुशीला टाकभौरे की कहानियां एक सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरणादायक माध्यम के रूप में कार्य करती हैं, जो दलित विमर्श को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती

हैं। उनकी कहानियां आज के समय में भी महत्वपूर्ण साबित होती हैं, क्योंकि वे समाज में सामाजिक न्याय और समानता के प्रति जागरूकता बढ़ाती हैं।

१.सामाजिक दलित विमर्श

सुशीला जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक दलित विमर्श को अत्यंत महत्वपूर्ण बनाया है। उनकी कहानियां न केवल दलितों के जीवन के अन्यायों को उजागर करती हैं, बल्कि समाज में विद्रोह और समाजिक परिवर्तन की भावना को भी स्पष्ट करती हैं।

उनकी कहानियों में सामाजिक दलित विमर्श का प्रमुख ध्येय है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों की असमानता, उत्पीड़न और समाज में उनके साथ होने वाले अन्याय को उजागर करती हैं। उन्होंने समाज की दोहरी मान्यताओं और स्वार्थपरता को खुलकर चुनौती दी है।

उनकी कहानियों में दिखाई गई विविधता समाज के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करती है। उनके किरदार आम जनता के अनुभवों को दर्शाते हैं और समाज की ताकतवर वर्गों के खिलाफ उनकी लड़ाई को रेखांकित करते हैं।

सुशीला टाकभौरे की कहानियों में सामाजिक दलित विमर्श का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलु उनकी भावनात्मकता है। उनके किरदार अक्सर विशेष प्रकार की दुर्दशा से जूझते हैं, जो उनकी आत्मा को घातक रूप से प्रभावित करती है। इसके परिणामस्वरूप, उनके कहानों में एक

सामाजिक दलित विमर्श का दृष्टिकोण प्राप्त होता है जो दर्शकों को उनके भावनात्मक संघर्षों को समझने में मदद करता है।

सुशीला टाकभौरे की कहानियां समाज में सामाजिक दलित विमर्श की गहराई को उजागर करती हैं। उनके काम में विविधता, गहराई और साहित्यिक योगदान का एक महत्वपूर्ण संयोजन देखा जा सकता है जो सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

१.१ नारी शोषण

दलित कहानियों में नारी शोषण और कुछ ऐसे कहानियाँ हैं, जिसमें नारी मन का अंर्तद्वंद्व चित्रित हुआ है। नारी के पास अधिकार नहीं केवल कर्तव्य है, जिन्हें पूरा करते-करते वह इतनी थक जाती है कि जीवन की आख़िरी घड़ी तक वह अपने विषय में कुछ सोच नहीं पाती है। उसके अतिंम समय में उसके पास एक टीस, वेदना और मौन चीत्कार के अलावा कुछ भी नहीं बचता है। उनको अपना पूरा जीवन इसी कर्तव्य को निभाते ही बिताना है।

'मेरा बचपन' इस कहानी में सामाजिक रीति रिवाज़, परम्पराओं के कारण समाज में बेटियों को पराई वस्तु मानी जाती है। गाँव के बड़े बुजुर्ग अक्सर कहते थे -"लड़कियाँ तो चिरैया है, समय आते ही उड़कर परदेस चली जाएंगी... ।" "लड़कियाँ उनकी ससुराल की अमानत है, पाल - पोस के उन्हें लौटा देंगे।" "लड़कियाँ चूल्हे का लूगड़ा (जलती लकडी) है। जहाँ का लूगड़ा वही जले तो अच्छा है।" [१](डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.१५)

सामाजिक मानसिकता की यह भावना एक शिंकजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधक रही है। समाज में लड़कियों का कोई पहचान ही नहीं है। लड़कियों को हमेशा पराया ही माना जाता हैं।

मध्यप्रदेश की वर्ण भेद - जाती भेद की मानसिकता और सामाजिक व्यवहार के बीच जन्मी, पली - बढ़ी एक अछूत जाति की लड़की में कितना मनोबल हो सकता था? हर बात के लिए बंधन, अपमान, अंकुश। लेखिका ने भी यह शिंकजे का दर्द महसूस किया। और जीवन के उन क्षणो को को याद कर रही है जो कष्ट, अभाव और अपमान के बीच उसने जीया था।

जब स्कूल से सवर्ण घरों के बच्चे लौटते थे तब उनकी माँ उनपर घर के बाहर ही पानी छिड़क दिया जाता था। और दूसरे कपड़े पहनने के लिए दिया जाता था। और वे नाक - सिकोड़कर नफ़रत से कहते थे - "न जाने कौन कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर आते है। सब छुआछूत घर में लाते है।"[२] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.१७) इस तरह समाज में अछूतों को अपमानित महसूस कराते थे।

'मेरा समाज' इस कहानी में लड़कियों को ससुराल जाने के बाद परिवार के खर्च उठाने के लिए उन्हें नौकरी करने के लिए भेजा जाता। समाज में लोगों की मानसिकता यह है की लड़कियों को सिर्फ अपना परिवार को ही संभलना है। वह बाहर जाकर काम भी करती है, और घर का भी पूरा काम करती हैं - खाना पकाना, खिलाना, मांजना, धोना सब करके अपने बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी भी निभाती है। यह सब करके भी उन्हें पति से मार, सास से गालियाँ और ननदों से ताने मिलते है। फिर भी वह चुपचाप सहती रहती है ।

१.२ जातिगत भेदभाव

जाति भेदभाव एक सामाजिक समस्या है जो मानव समाज में समृद्धि और सामरिक न्याय को खतरे में डालती है। इसका अर्थ है व्यक्ति को उसकी जाति के आधार पर अलग-अलग मान्यता, अवसर और सामाजिक स्थिति का अनुभव करना। जातिवाद न केवल व्यक्तियों के बीच विभाजन बढ़ाता है, बल्कि समाज के विकास को भी रोकता है।

जातिवाद के कई पहलुओं में से एक है असमानता। यह लोगों को उनकी जाति के आधार पर अलग-अलग समाजिक और आर्थिक स्थिति में रखता है, जिससे वे विकास के अवसरों से वंचित रहते हैं। इससे समाज में बैर-भावना और विवाद बढ़ते हैं और एकता और एकात्मता की भावना कमजोर होती है।

जातिवाद न केवल समाज में विभाजन पैदा करता है, बल्कि इससे लोगों के बीच विवाद भी उत्पन्न होते हैं। इसके परिणामस्वरूप, समाज में विकास और प्रगति की गति कम हो जाती है क्योंकि समाज की ऊर्जा और संसाधनों का बदलाव सामाजिक और आर्थिक असमानता की वजह से रोकी जाती है। जातिवाद के दौरान, लोगों को उनकी क्षमताओं के आधार पर नहीं देखा जाता है, बल्कि उनकी जाति के आधार पर ही उन्हें समाज में स्थान दिया जाता है। यह न्याय की अभावना को बढ़ाता है और समाज को पूरी तरह से विकसित होने से रोकता है।

इस समस्या का समाधान समाज के सभी वर्गों के सहयोग और समर्थन के लिए आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से जातिवाद के खिलाफ जागरूकता फैलाना, समाज में समानता और न्याय को बढ़ावा देना और समरसता की भावना को बढ़ावा देना इस समस्या का समाधान करने के

लिए महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं। जातिवाद को समाज से उखाड़ने के लिए हमें समाज में जागरूकता फैलाने, शिक्षा के माध्यम से समाज में समानता की भावना को बढ़ाने और समरसता के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है। यह सिर्फ एक सामाजिक समस्या ही नहीं है, बल्कि इसका हल हमारे समाज के विकास और समृद्धि के लिए भी आवश्यक है।

'मेरा बचपन' इस कहानी में लेखिका सुशीला जी के घर में पानी मुश्किल से मिलता था वह हमेशा पानी मांगकर लेती थी। वह कभी रेलवे स्टेशन के नल से छोटी गागर में पानी भर लेती, तब लोग नल को मिट्टी से कभी पाँच बार, कभी सात बार माँजते - धोते थे और लेखिका को घृणा - उपेक्षा से देखते हुए डाँटते - फटकारते थे।[३] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.१८)

'झरोखे' इस कहानी में बड़े लोग अपने बच्चों को बचपन से ही सिखाते है कि -'हम निम्न जाति के है, ऊँची जाति के लोग अपने से भेदभाव मानते है। इसी लिए कभी किसी सहेली के घर भीतर नहीं जाना, न ही उनके घर के बर्तन में कुछ खाना - पीना। वे लोग अपन से ऐतराज करते है। इसीलिए अपन ने भी कुछ कहने - सुनने का मौका नहीं देना चाहिए। यह सिखाने के बजाय अपने बच्चों को समाज में अपने हक के लिए लड़ना सिखाते तो आज उन्हें इन समस्याओं से गुजरना नहीं पड़ता।

स्कूल में कोई भेदभाव नहीं होता सब साथ बैठते है, खेलते है लेकिन उनके घर में जाकर बैठकर बातें नहीं कर सकते। ऐसे जातीय बंधनों को देखकर लेखिका का मन ग्लानि और दुःख से भर जाता था। तब उनकी माँ उन्हें यही समझाती थी -"हमारा काम रोजगार छोटे होने के कारण

हमसे छुआछूत का भेदभाव किया जाता है। यदि तुम सब पढ़ - लिखकर अपनी योग्यता बनाओगे और अच्छी नौकरी करोगे तब तुमसे भेदभाव नहीं करेंगे।"[४] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.२८)

'टूटता वहम' इस कहानी में लेखिका जब कॉलेज में प्राध्यापिका नौकरी करती थी। कॉलेज में लेखिका के साथ भेदभाव व्यवहार नहीं करते थे और लेखिका को भी ऐसा महसूस नहीं होता था। लेकिन जब लेखिका सभी प्राध्यापिकाओं अपने घर खाना खाने का निमंत्रण देती है । तब दो - तीन मैडम कहने लगी -"अरे नहीं, हमारा तो उपवास है हम नहीं आयेंगे।" तभी कोई उदारमना कहती -" रहने दो न मैडम, आप क्यों तकलीफ करती हो। जब हमें आना होगा हम खुद आ जायेंगे, बिना बुलाये आयेंगे।"[५](डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.४३)

कॉलेज में तेरह प्राध्यापिकाएं थी उनमें लेखिका एस. सी थी। एक एस. टी थी, एक मुस्लिम थी। तीन महिलाएं ओ. बी. सी थी। और शेष सब ब्राह्मण और बनिया समाज की थी। लेखिका को लगा था की अपने घर ८-९ तो महिलाएं आएगी जब वह दूसरे के घर दावत के लिए जाती थी तब वह ८-९ महिलाएं अवश्य आती थी। उनको विश्वास था की अपने भी घर उतने ही आएंगे उसी हिसाब से वह खाना बनाती है। बैगन की बढ़िया सब्जी, पुरियां, पकौड़े, मसालेदार चने, गुलाब जामुन और भी बहुत सी चीजें डायनिंग टेबल पर सजा कर रखी गयी।

लेखिका के घर में मेहमान तो केवल चार ही आये उनमें से एक का व्रत था। भोजन के लिए केवल दो महिलाएं बैठी। और तीसरे ने कहाँ - "आपको तो पता है, आज चतुर्थी है, मेरा व्रत है। आप मुझे बस एक कप दूध दे दो। खाना मैं फिर कभी आपके घर खाऊंगी।"

जो महिला डेढ - दो घंटो से साथ है और उससे सभी प्रकार की बातें हो रही थी लेकिन उसने एक बार भी अपने व्रत या चतुर्थी के विषय में नहीं बताया था। वह ब्रह्मण थी, व्रत, पूजा अधिक करती है यह सबको मालूम था मगर इस तरह केवल नाममात्र के लिए घर आना, पुरे समय चुप रहना भोजन के समय कहना - मेरी तो चतुर्थी है। लेखिका मन में लगा,'वह उनके घर के भोजन का बहिष्कार तो नहीं?' यहाँ पर जाति के कारण भेदभाव दिखाई देता है। भले ही वह नहीं देखाती है जाति भेदभाव लेकिन मन में कही न कही जाति भेदभाव को मानते है।

जब लेखिका और उनके पति कीमत का फ्लाट खरीद नहीं सकते तब उनके पति ने अपने सहयोगी शिक्षक शर्मा जी से कहते कि दोनों मिलकर आधा आधा करके यह प्लाट लेते है। तब शर्मा जी कुछ सोचकर बोले - "पत्नी से पूछ कर आपको बताता हूँ।" शर्मा जी की रहा देखते देखते एक माह बीत गया। जब पता चला कि वह प्लाट बिक चुका है तब लेखिका और उनके पति बहुत पछताए थे। आठ वर्ष बाद उनके पति ने यह बात एक सहयोगी शिक्षक मित्र को बताया - "शर्मा जी ने देर कर दी, नहीं तो इतना बढ़िया प्लाट हम दोनों मिलकर अपने अपने माकन बनाते।" तभी मित्र ठाकुर ने अपनापन जताते हुए धीरे से बोले - "भैया, बताना मत, कहाँ के चक्कर में थे? क्या शर्मा तुम्हारे साथ प्लाट खरीदकर और मकान बनाकर तुम्हारे पड़ोस में रहता? यह तो उसने पहले दिन ही सोच लिया था कि तुम्हारे साथ प्लाट नहीं खरीदेगा। भले ही जिन्दगी भर किराये के मकान में रहेगा मगर अच्छा मकान मिले तब भी तुम्हारे पड़ोस में नहीं लेगा। उसने यह बात कुछ लोगों को तभी बता दी थी। आप भी बड़े भोले हो, जो उसके झांसे में आ गये और महीना भर उसकी राह देखते रहे।"[६] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.४५)

'सिलिया' इस कहनी में जब सिलिया की मामी की बेटी मालती प्यास लगने पर गाडरी मुहल्ला के कुएँ से पानी पी लेती है। उसी कारण से मामी अपनी बेटी मालती को बाल पकड़कर मार रही थी, साथ ही जोर जोर से चिल्लाकर कह रही थी "…. क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएँ से पानी भर सके है? क्यों चढ़ी तू कुएँ पर? क्यों रस्सी बाल्टी को हाथ लगाई?"[७](डॉ.सुशीला टाकभौरे- टूटता वहम, पृ.स.५६)

एक साल बाद पहले जब सिलिया पांचवी कक्षा में थी तब टूर्नामेंट हो रहे थे। खेल खुद की स्पर्धाओं में सिलिया ने भी भाग लिया था। जल्दी खत्म होने पर सर ने अपने सहली को सिलिया को अपने बहन के घर लेकर जा। जब उनकी बहन के घर पहुंचे उनके बहन ने हेमलता को पानी गिलास दिया। और सिलिया के बारे में पूछनी लगी जब हेमलता ने उसकी जात के बारे में बताया। उसकी बहन ने सिलिया को पानी नही दिया। मौसी जानती थी कि उसे प्यास लगी है फिर भी जाति का नाम सुनकर वह पानी का गिलास वापस लें गई थी।

'धूप से भी बड़ा' इस कहानी में सुनील एक पिछड़ी जाति का लड़का है और रमा उच्चवर्ण, सम्पन्न, बड़े अधिकारी की इकलौती बेटी थी। रमा सुनील की आँखो में अपने लिए प्रेम भाव देख रही थी। लेकिन रमा उसके जाति के बारे में पहले से जानती थी इस कारण उसे साथ शादी - ब्याह जैसे सम्बन्ध की वह कल्पना भी नहीं करती थी। सुनील के घर का वातावरण उसे पिछड़ा लगता था। सुनील के रिश्तेदार अनपढ़, गंवार और असभ्य हैं-ऐसा मानकर वह उनके प्रति आदर और बराबरी का भाव कभी नहीं रख पाई थी। उच्चवर्ण और शूद्रवर्ण का भेद, जातिवादी विचारों

ने उसे बचपन से समझा दिया था। सुनील डॉक्टर बनने जा रहा है लेकिन है तो अछूत ही न। ऐसा वह मानती थी।

१.३ शिक्षा विषय में संघर्ष

सुशीला टाकभौरे की कहानियाँ भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण हिस्से हैं, जो गहरे सामाजिक संदेश और दलित विमर्श को व्यक्त करती हैं। उनकी कहानियाँ आम आदमी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को परिदृश्य बनाती हैं, जिससे वह समाज में होने वाले अन्याय और विभाजन को दर्शाती हैं। उनकी कहानियों में शिक्षा के महत्व को उजागर किया गया है, और यह उनके काम का एक प्रमुख तत्व बनता है। उन्होंने दलितों के शैक्षिक अधिकारों की महत्ता पर ध्यान केंद्रित किया है और उन्हें उनके अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा दी है।

उनकी कहानियों में शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत और सामाजिक उत्थान के महत्व को उजागर किया गया है। उन्होंने यह दिखाया है कि शिक्षा केवल ज्ञान का स्रोत नहीं होती, बल्कि वह समाज में बदलाव लाने का माध्यम भी होती है। उनकी कहानियों में शिक्षा के माध्यम से समाज में समानता और न्याय की मांग की गई है।

उनकी की कहानियों में दलितों के जीवन की विविधता और उनके सामाजिक संघर्ष को उजागर किया गया है। उन्होंने दिखाया है कि दलितों के जीवन में शिक्षा का महत्व केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं होता, बल्कि यह उन्हें समाज में अपनी अधिकारों की मांग करने का साहस देने में भी

मदद करता है। उनके द्वारा उठाए गए सवाल और प्रस्तुत किए गए सामाजिक संदेश दर्शाते हैं कि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग न केवल ज्ञान का होता है, बल्कि यह समाज में बदलाव लाने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

१.४ स्कूल में निम्न जाति के बच्चों में भेदभाव

'मेरा बचपन' इस कहनी में लेखिका एक निम्न जाति की थी और जब लेखिका स्कूल जाने लगी कक्षा में ब्रह्मण, बनियों के बच्चे भी थे। उनको सबसे आगे बैठाया जाता था। और पिछड़ी जाति के होने के कारण पीछे बैठाया जाता था। एक दिन सुशीला जी कक्षा में सबसे आगे जाकर बैठती है। पढ़ाते समय गुरूजी ने लेखिका के तरफ देखकर गुस्से से कहा था - "सुशीला, तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।" फिर उन्होंने पूरी कक्षा को डांटकर कहा था - "जिसको जिस जगह पर बैठने के लिए कहा गया है वह अपनी जगह पर बैठेगा। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा।"[८] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.२०)

१.५ शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता

किसी भी समाज की प्रगतिशीलता वहाँ की शिक्षा पर निर्भर होती है। सामाजिक प्रक्रिया में शिक्षा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होगी उसी प्रकार के समाज का निर्माण भी होगा। सदियों से दलितों के पिछड़ेपन का कारण उनका अशिक्षित

होना है। आज भी दलितों के बीच में शिक्षा की कमी है। शिक्षा के अभाव के कारण वे न कभी अपने अधिकारों को समझ सकें; न उनकी प्राप्ति के लिए आवाज़ उठा सकें। शोषण का आधार क्या है? यह जाने बिना संघर्ष नहीं किया जा सकता। यह ज्ञान शिक्षा से ही प्राप्त हो सकता है।

'नई राह की खोज' कहानी में रामचंद्र अनपढ़ है। वह अपने बेटे लालचंद को अग्रेंजी कॉनवेंट स्कूल में भेजता है। मगर घर में सभी अनपढ़ होने के कारण उसके आगे की पढ़ाई नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप उसे पाँचवीं कक्षा से फिर कारपोरेशन की हिंदी प्राइमरी स्कूल में दाखिला किया जाता है। उसे हिंदी अच्छी तरह से न आने के कारण यह स्कूल से भागने लगता है। अतः वह मैट्रिक भी नहीं कर पाता। घर में सभी यह कहते हैं- "अरे आगे चलकर तो बाप का ही काम करना है क्या ज़रूरत है। अग्रेंजी पढ़ाई-लिखाई की। साहब बाबु की नौकरी हम लोग के नसीब में कहाँ होती है?"[१] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.६६)

दलित समाज के लोगों को यह जानना ज़रूरी है कि जीवन की लड़ाई को लड़ने के लिए शिक्षा ही सबसे ज़्यादा मारक और शक्तिशाली अस्त्र है। ये लोग अपने बच्चों के बारे में गंभीरता से सोचते नहीं हैं। अतः बच्चे होशियार और बुद्धिमान होकर भी कुछ नहीं कर पाते। घर का वातावरण और अर्थाभाव उनकी पढ़ाई अधूरी रह जाने का और एक कारण है। अतः उनमें यह संदेश देना ज़रूरी है कि शिक्षा के माध्यम से ही अन्याय और असमानता के ख़िलाफ़ संघर्ष कर सकते हैं।

१.६ धार्मिक आडंबरों में विश्वास

दलित समाज के लोग, धर्म में विश्वास रखते हैं। वे अपनी उन्नति की गति और भाग्य भगवान के भरोसे छोड़ देते हैं। दलित लोगों को यह सोचना ज़रूरी है कि जब तक वे अपनी प्रगति के विषय में खुद नहीं सोचेंगे तब तक कोई भी भगवान और मंदिर से लाभ नहीं होगा।

'मंदिर का लाभ' कहानी में बहुत अधिक रूपए खर्च करके एक राधा-कृष्ण का मंदिर बनाया जाता है। परंतु मंदिर में मूर्ति की स्थापना करने के लिए कोई भी पुजारी नहीं आता। एक पुजारी आता है सामान्य तरीके से पूजा करके मूर्ति की स्थापना करता है। कुछ दिन लोग पूजा-पाठ करने मंदिर में आते हैं। बाद में उस मंदिर में कोई नहीं जाता। वह मंदिर केवल एक वस्तु बनकर रह जाता है। समाज के लिए उसका कोई लाभ नहीं होता है। धर्म के नाम पर आडंबर और अधीं भक्ति समाज का उद्धार नहीं कर सकती।

'व्रत और व्रती' कहानी में धर्मपाल एक अभाव ग्रस्त युवक है जो मेहनत मज़दूरी करके अपना जीवन बिताता है। वह अपने कष्टों को दूर करने के लिए जन्माष्टमी के दिन भगवान श्री कृष्ण का व्रत करता है। वह दिनभर उपवास करता है। परंतु दोपहर से उसकी तबीयत बिगड़ने लगती है। वह रात को किसी तरह से पूजा करके खाना खाता है। मगर ज़्यादा खाने से सब उगल पड़ता है। उसे रात भर खाली पेट से सोना पड़ता है। अतं में वह समझ लेता है- "इस भागती मशीनी ज़िंदगी में अपने पेट की आग बुझाने का इतंजाम भी स्वयं ही करना है।"[१०] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.७८)

१.७ अंधविश्वास

'मेरा समाज' इस कहानी में अंधविश्वास से ग्रस्त है। यदि बिल्ली ने रास्ता काट दिया तो अशुभ, कौए ने पंख मार दिया तो अशुभ। किसी के शरीर में देव- भूत का आना भी विश्वास के साथ सच माना जाता था। और उन्हें शरीर से बाहर निकलने कि भी पूजा प्रक्रिया करते थे। लेखिका घर मर विशेष रूप से रामदेव पीर की पूजा मुर्गा और मलीदा का प्रसाद चढ़ाकर की जाती थी। इसी तरह विजयासेन देवी की पूजा करके उनके नाम की बेल बनाकर रक्षक सूत्र के रूप में बच्चों के गले में बांधी जाती थी।[११] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.३२)

१.८ आत्मविश्वास की कमी

आत्मविश्वास की कमी दलित समाज के लोगों के मन में घर कर गई है। वे अपने आपको हमेशा निम्न और हीन मानते हैं। उनके इन विचारों में परिवर्तन लाना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना ज़रूरी है।

'झरोखे' कहानी में ऐसा कहा है कि घर के बड़े लोग अपने बच्चों को बचपन से यह सिखाते हैं कि "हम जाति में छोटे हैं, बड़े लोगों के घर के भीतर नहीं जा सकते।" ऐसे विचार भरने से बच्चों के मन में संकोच का भाव पैदा होता है। ऐसे विचार मन में जगाने के बाद व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। इससे उनमें हमेशा संकोच, शर्म, पीछे रहने की भावना, जातिभेद का दुःख अपमान होने का भय आदि बना रहता है। जो सर्वगुण संपन्न होने के बाद भी

उसमें पूर्ण आत्मविश्वास नहीं जगाने देता है। साथ ही अन्याय का सामना और डटकर खड़े रहने की भावना नहीं पैदा होती है।[१२] (डॉ. सुशीला टाक भौरे -टूटता वहम, पृ.स.२८)

दलित समाज के लोगों को यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि सम्मान और अपमान के भेद को समझे और सही रूप में सम्मान का हक़दार बने। अतः इन लोगों को अपने बलबूतें पर विश्वास करके स्व उद्धार कर लेना आवश्यक है।

'सिलिया' कहानी में भी सार्वजनिक कुएँ के पानी पीने के कारण मालती को उसकी माता बहुत डाँटती है। सवर्ण लोग मालती पर यह आरोप लगाते हैं कि उसने रस्सी, बाल्टी और कुएँ को छू कर अपवित्र कर दिया है। उसकी माँ, मालती को बहुत मारती है। सिलिया यह सब देखती है। परंतु संकोच के कारण वह कुछ भी बोल नहीं पाती है।[१३] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.५६)

१.९ आर्थिक विपन्नता का चित्रण

समाज में सम्मान के साथ जीने में अर्थ का स्थान महत्वपूर्ण है। अधिकतर जो संघर्ष होते हैं इसके मूल में आर्थिक विपन्नता ही है। आर्थिक असमानता के कारण कोई अमीर तो कोई ग़रीब दिखाई देता है। किसी भी अर्थ व्यवस्था का परिदृश्य आर्थिक कारणों से ही संचालित होता है।

आर्थिक समस्या को केंद्र में लेकर आधुनिक युग के लेखकों ने अनेक रचनाएँ की हैं। आर्थिक समस्या के अतंर्गत उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति को लिया जाता है। लेखिका सुशीला टाकभौरे जी के अधिकतर पात्र निम्नवर्ग के हैंb। इसलिए उनकी रचनाओं में निम्नवर्ग की आर्थिक कठिनाईयाँ और उससे उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है।

'मेरा समाज' कहानी में भी आर्थिक विपन्नता का चित्रण मिलता है। दलित समाज के लोग सुबह आठ बजे तक बिस्तर में पड़े रहते हैं। पत्नी या बच्चों को अपनी मजदूरी के लिए भेज देते हैं। घर का वातावरण, किताब कॉपियों का अभाव, पिता की बेबसी और माँ की लाचारी भी उन्हें आगे नहीं पढ़ने देते हैं। घर की ज़रूरते और खर्च देखकर उनकी पढ़ाई जल्दी ही बंद कर दी जाती थी। आगे परंपरागत काम पर वह लगा देते थे।[१४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.३१)

'नई राह की खोज' कहानी में रामचंद का बेटा लालचंद अग्रेंजी कॉनवेंट स्कूल में पढ़ता है। अग्रेंजी की कक्षा चौथी तक वह पास होता है। स्कूल के यूनिफार्म, टाई, जूता, मोज़ों की फ़िकर करने में ज़्यादा रूपयों की ज़रूरत है। कर्ज़ भी इस प्रकार बहुत बढ़ गया। महँगी किताब कापियाँ स्कूल की फ़ीस, ट्यूशन की फ़ीस और साथ में बहुत से खर्च कभी क़र्ज़ लेकर कभी कोई गहना गिरवी रखकर लालचंद की चौथी क्लास पास करवायी गयी।[१५] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.६५)

'नयी राह की खोज' कहानी में रामचंद का बेटा लालचंद अग्रेजी कॉनवेंट स्कूल में पढ़ता है। अग्रेंजी की चौथी कक्षा पास होता है। परंतु स्वार्थ बढ़ने के कारण महँगी किताब-कापियाँ

स्कूल की फ़ीस, ट्यूशन की फ़ीस आदि का ख़र्च घरवाले उठा नहीं पाते हैं। कभी क़र्ज लेकर और कभी कोई गहना गिरवी रखकर लालचंद की पढ़ाई चलती है। परंतु आगे की पढ़ाई के लिए इतना ख़र्च उठाया नहीं जाता इस बात को लेकर घर में घंटों बहस होती है। माँ कहती- "और भी तो बच्चे हैं अपने, क्या उन्हें ज़हर दे दें। आगे की पढ़ाई कठिन है, हिंदी में ही पढ़ लेगा।"अतः लालचंद को कॉरपोरेशन की हिंदी प्राइमरी कक्षा पाँचवी में भेजते हैं। लालू एक होशियार लड़का होकर भी आर्थिक विपन्नता के कारण आगे की पढ़ाई नहीं कर सकता है।[१६] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.६६)

१.१० छुआ-छूत की समस्या

प्राचीन काल से ही दलितों को अस्पृश्य या अछूत माना गया है। दलितों को सार्वजनिक कुएँ, तालाब से पानी लेना भी मना है, जबकि उस तालाब से जानवर तक पानी पीते थे। सवर्णों के घर के अदंर तो दूर, उनके मुहल्लों में चलने के लिए भी पाबंदी थी। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता दूर करने का नियम बना है। लेकिन आज भी हमारे देश में छुआ-छूत की भावना क़ायम है।

'टूटता वहम' कहानी में भी इसका चित्रण मिलता है। इस प्रगतिशील युग में भी आज भी जनता के बीच जातिभेद और अस्पृश्यता की भावना प्रचलित है। इस कहानी की लेखिका अपनी सहेलियों को अपने घर खाना खाने बुलाती है। लेखिका अछूत होने के कारण सहयोगी

प्राध्यापिकाएँ विभिन्न कारण बताकर बात टाल देती है। अनुसूचित जाति की दोनों खाना खाने आती है।

'सिलिया' कहानी में भी यही समस्या को देख सकते हैं। इसकी नायिका मालती को बहुत प्यास लगती है। वह निर्भय होकर कुएँ से पानी निकालकर पीति है। कुएँ के पास रहनेवाली एक बकरीवाली स्त्री, मालती और उसकी माँ को बहुत डाँटती है। वह ऊँचे स्वर में चिल्लाकर सारा मुहल्ला इकट्ठा करती है- "अरी बाई, दौड़ो री... जा मोडी को समझाओ, देखो तो, मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है... हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने..।"[१७] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.५७)

इस प्रकार छुआ-छूत की समस्या हर कहीं देख सकते हैं यद्यपि कुछ लोग कहतें हैं कि वे जातिभेद को नहीं मानते परंतु उनका आचरण इसके विपरीत दिखाई देता है। दलितों को छुआ-छूत की इस अमिट भावना को मिटाने के लिए संघर्षशील होना ज़रूरी है।

'मंदिर का लाभ' कहानी में एक ही भगवान को माननेवाले सवर्ण और अछूतों के बीच जातिभेद और छुआ-छूत की भावना का चित्रण है। इसमें नानी राधकृष्ण का मंदिर बनवाती है। परंतु मंदिर में भगवान की मूर्ति की स्थापना के लिए पुजारी साफ़ इनकार कर देते हैं। एक पुजारी कहता है- "शास्त्रों में कहीं लिखा है कि तुम्हारी जाति के लोग मंदिर बनवाए और भगवान की स्थापना करें, तुम लोगों ने बड़ा पाप किया है, भगवान को भी अपवित्र कर दिया है। हम ऐसे काम में तुम्हारा साथ नहीं दे सकते और फिर तुमने सोच कैसे लिया कि हम तुम्हारे घर और तुम्हारे मंदिर में आकर पूजा करेंगे? राम, राम हे भगवान बहुत पाप बढ़ गया हैं। इसी से तुम्हारी मति मारी

गई। तुम्हारा तुम जानो; हमारे आने की राह मत देखो, जो दिखता है जो समझ में आता है; खुद कर लो।" एक पंडित सामान्य तरीके से मूर्ति की स्थापना करता है और जाते समय लोटे का पानी सभी वस्तुओं पर और स्वयं पर छिड़ककर पवित्र होता है।[१८] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.५०)

'टूटता वहम' कहानी में लेखिका अपनी सहेलियों को अपने घर खाने पर बुलाती है। परंतु वे विभिन्न कारण बताकर टाल देती हैं। घर में खाना खाने केवल चार सहेलियाँ आती हैं। उनमें से दो की चतुर्थी थी, खाने पर दलित समाज की सिर्फ दो ही थी।[१८] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.४३)

१.११ नई पीढ़ी में उभरते विद्रोह का चित्रण

'नई राह की खोज' कहानी में रामचंद्र अपने बेटे लालचंद को अग्रेजी कॉनवेंट स्कूल में भेजता है। लेकिन घर के अनपढ़ वातावरण में वह आगे नहीं पढ़ सकता है। अतः उसकी पढ़ाई ख़तम हो जाती है। लालचंद अपने बेटे को खूब पढ़ाता है। समाज के जागृत लोगों के साथ मिलकर वह 'जागरूक' संस्था खोलता है। लालचंद का बेटा हरिचंद नई पीढ़ी का प्रतीक बनकर समाज को नई राह की खोज का संदेश देते हुए उपदेश देता है कि समाज को उद्योग व्यवस्था की ओर प्रेरित करना आवश्यक है। इससे ही समाज को आत्मनिर्भर और समानता-सम्मान मिलेगा। उनकी राय में "तभी नई पीढ़ी के होनहार नौनिहालो का भविष्य सुंदर, सुखद और सुरक्षित रह

सकेगा। मगर वह सब तभी संभव हो सकेगा जब सभी लोग इस नयी राह पर चलेंगे।"[१९] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.७२)

नयी पीढ़ी के विद्रोह के चित्रण अनेक कहानियों में मिलते है। इस विद्रोह के माध्यम से परंपरागत सफ़ाई व्यवसाय छोड़कर अच्छे सम्मानित व्यवसाय और नौकरी आदि पाने की नयी पीढ़ी की उत्कट इच्छा है। इसमें दलितों को नयी दिशा दिखाने का रास्ता भी निहित है।

१.१२ आक्रोश का चित्रण

हर एक व्यक्ति किसी न किसी वक़्त बेबसी और लाचारी से अपना आक्रोश व्यक्त करता है। उसके अदंर की पीड़ा बाहर प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है।

'सिलिया' कहानी में आक्रोश का सुंदर चित्रण हुआ है। युवा नेता सेठ जी विज्ञापन द्वारा शूद्र वर्ण की लड़की से विवाह करने का विचार प्रकट करता है तो सिलिया सेठ जी के ढोंग पर अपना आक्रोश व्यक्त करती है। और सोचती है कि "हम क्या इतने लाचार हैं? आत्मसम्मान रहित हैं? हमारा अपना भी तो कुछ अहंभाव है, उन्हें हमारी ज़रूरत है, हमको उनकी ज़रूरत नहीं, हम उनके भरोसे क्यों रहे…अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएँगे।"[२०] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.८-५९) यहाँ सिलिया सेठ से शादी करके दया का पात्र नहीं बनना चाहती। सिलिया अपना सम्मान और गौरव को बनाए रखना वह आवश्यक मानती है।

संदर्भ

१.डॉ. सुशीला टाकभौरे –टूटता वहम,अनिरुद्ध बुक्स १९, टैगोर मार्ग, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली-110033, संस्करण -2012, पृ.स.१५

२. वही - पृ.स.१७

३. वही - पृ.स.१८

४. वही - पृ.स.२८

५. वही - पृ.स.४३

६. वही - पृ.स.४५,

७. वही - पृ.स.५६

८. वही - पृ.स.२०

९. वही - पृ.स.६६

१०. वही - पृ.स.७८

११. वही - पृ.स.३२

१२. वही -पृ.स.२८

१३. वही -पृ.स. ५७

१४. वही -पृ.स.३१

१५. वही -पृ.स.६५

१६. वही -पृ.स.६६

१७. वही -पृ.स.५६

१८. वही -पृ.स.४३

१९. वही -पृ.स.७२

२०. वही -पृ.स.५९

पंचम

भाषा शैली

१.भाषिक संरचन

१.१ भाषा

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर, लिखकर व पढ़कर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है।

किसी भी रचना में विषयवस्तु के साथ-साथ भाषा शिल्प भी महत्वपूर्ण होता है। जब तक साहित्यिक कृति के माध्यम के रूप में भाषा के शिल्प का महत्व भी बना रहेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक रचनाकार को भाषा शिल्प का सहारा लेना पड़ता है। लेखक जिस विधा में लिख रहा है। उसे उसी भाषा में लिखना चाहिए। भाषाशिल्प पाठकों की रूचि के अनुसार साहित्य चुनाव में सहायक होता है। इसके साथ ही अपनी शिल्पगत्त विशेषताओं के आधार पर उसे स्थायित्व प्रदान करता है। यही आकर्षित पाठक को, किसी भी रचना को आरम्भ से लेकर अंत तक पढ़ने के लिए विवश कर देता है। जब भी कोई रचनाकार अपने विषय के प्रति उचित न्याय और शिल्प योजना करता है, तभी वह रचना सफल सिद्ध होती है।

सुशीला जी के लेखन में गद्य की भाषा में शब्द चयन और वाक्य प्रयोग का उपयोग साहित्य की भाषा शैली में किया गया है। जिससे साहित्य पाठकों को झकझोर कर रख देती है। इनके लेखन की भाषा शैली सरल, सुगम, संतुलित, प्रवाहपूर्ण है। जिससे पाठक सरल भावप्रवाह का रसास्वादन कर सकता है। इनके गद्य की भाषा जीवन्त प्रतीत होती है। इनकी रचना में कुछ

भी आरोपित नहीं लगता हैं। भाषा इतनी स्वाभाविकता पूर्ण है कि रचना खुद बोलने लगती है। तथा यथार्थ चित्रण, पात्र व परिस्थिति के अनुकूल सिद्ध हस्त हैं।

इनकी भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा में स्वच्छन्दता सरलता बोधगम्यता व रोचकता है। उनकी भाषा सरल रोचक होने के कारण पाठकों के हृदय को मोह लेती है। भाषा के विभिन्न प्रयोगों से इनके साहित्य में निखार आया है। भाषा शिल्प का भी अत्याधिक सुन्दर प्रयोग किया है। सुन्दर बिंब योजना, समृद्ध भाषा, कलात्मक शैली और उद्देश्यपूर्ण योजना स्पष्ट दिखाई देती है।

इनके साहित्य में भाषा के शब्द प्रयोग के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं जैसे तत्सम शब्द, फारसी शब्द, अंग्रेजी शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियां आदि दिखाई देती हैं। उन्होंने वर्णानात्मक, संवादात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, पूर्व दिप्ती, डॉट आदि कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा शैली की दृष्टि से उनका साहित्य सफल रहा है।

दलित कहानियों के विचारानुसार यह कहा जा सकता है कि ये सारी कहानियाँ आम दलित, जनसामान्य दलित जनता की भाषा में कही गयी है। इनमें ज़्यादातर चित्रित अशिक्षित मज़दूर और दबे हुए वर्ग के प्रतिनिधि होने के कारण इनकी भाषा में औपचारिकता कम दिखाई देती है। निकृष्टों की भाषा तो अपने जीवन संग्राम की भाषा है, उनके साहित्य में यही भाषा तो अभिव्यक्त होती है। अधिक रूप से बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह अवाक होने की बात नहीं है, क्योंकि ये कहानियों के भाषा पक्ष विचार करने की सही दृष्टि यही हो सकती

है। सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग इनमें कहाँ-कहाँ किया गया है इस विवेचन से हम देख सकते हैं -

१.२ सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग

हिन्दी कथा साहित्य में दलित कहानियों की भाषा का अलग निर्मित हो रहा है। इस अलग व्यक्तित्व की पहचान पात्रों की स्वाभाविक भाषा के प्रयोग के आधार पर की जा सकती है। स्वाभाविक रूप से यहाँ तात्पर्य है सामान्य भाषा का वह रूप जिसका प्रयोग सवर्ण और अवर्ण विविध सामाजिक परिस्थितियों में एक दूसरे से संभाषण में करते हैं। इस भाषा का केंद्र लालित्य न होकर दलित्य है। अर्थात दलित पात्रों को संबोधित करते हुए सवर्ण व्यक्ति की भाषा से यह झलकता है कि वह अपने से हीन संबोधित कर रहा है। दूसरी ओर जब दलित व्यक्ति बोलता है तो वह अपनी हीनता ग्रंथि से इतना ग्रसित रहता है, कि उत्कृष्ट वर्ग के व्यक्ति के सामने वह दयनीय रूप से बोलता है या आक्रोश में आकर बोलता है। अर्थात दोनों ही संदर्भ के अनुसार वक्ता-श्रोता संबंध भाषा चयन को सीधे प्रभावित करता है। लेखिका ने अपनी कहानियों में दलित जीवन से जुड़ी वास्तविक भाषा का प्रयोग किया है-

१. "अरी बाई, मेरा पेट दुख रहा है री... ओ माँ मेरा हाथ टूट गया रे... मैं आज स्कूल नहीं जाऊंगा, कल से जाऊंगा। आज मत जाने दो रे..."[१](डॉ. सुशीला टाक भौरे - टूटता वहम, पृ.स.१८)

२. "क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएँ से पानी भर सके है? क्यों चढ़ी तू कुएँ पर? क्यों रस्सी बाल्टी को हाथ लगाई?"[२] (डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ.स.५६)

३."अरी बाई, दौड़ो री, जा मोड़ी को समझाओ। देखो तो मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है, हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने...."[३](डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम पृ.स.५७)

अंग्रेजी शब्द का प्रयोग - स्कूल, नोटिस, रिजल्ट, हेडमास्टर, ईयर, सेकण्ड, साईन्स, टीम, टूर्नामेन्ट, यूनिवर्सिटी आदि।

उर्दू शब्द- गुंजाइश, जिद्द, कोशिश, किताब, जुर्म आदि।

तत्सम शब्द – वे शब्द जो संस्कृत से हिंदी में बिना ध्वनि परिवर्तन के ज्यों के त्यों आ गए है। उन्हें तत्सम शब्द कहते है। जैसे -जन्म, शिक्षा, वर्ष, सवर्ण, कृष्ण, मृत्यु, धर्म, देव, ईर्ष्या, निमंत्रण, अक्षर आदि।

तद्भव शब्द - तद्भव वे शब्द जो संस्कृत की परम्परा से ध्वनि परिवर्तनों के साथ परिवर्तित रूप में हिंदी को प्राप्त हुए है ल इस वर्ग में आते है। जैसे – बहु (वधू), माँ (माता), मैं (मया), रस्सी (रज्जु), घर (गृह), गाँव (ग्राम), पीछे (पश्चात), मौसी (मातृश्वसा) आदि। यहाँ कोष्ठक में दिए शब्दों से ये शब्द क्रमाश :विकसित हुए है।

मुहावरें - नजरों में तैरना।

कहावत - " रोटी कम खाओ, मगर बच्चों को पढ़ाओ।"[४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.६८)

गाली का प्रयोग - ‘कम्बख्त यह तो जानवरों से बदतर जीवन कायम रखने का हमारे लिए दुष्चक्र है।’[५] (डॉ.सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.५९)

२.शैली

२.१ संवादात्मक शैली

लेखिका ने अपने कहानियों में संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

‘मेरा बचपन’ इस कहानी में सुशीला स्कूल जाने के लिए माँ से जिद करते कहती है।

“मेरा भी नाम स्कूल में क्यों नहीं लिखावते? मैं कब स्कूल जाऊंगी? ”

“ हम नहीं लिखाएं, स्कूल में तेरो नाम। तू घर का काम कर।” माँ कहती है।[६]

(डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.१६)

‘धूप से भी बड़ा ’ इस कहानी में जब सुनील शादी का प्रस्ताव रखता है। तब रमा कहती है की “सुनील, मुझे सोचने के लिये थोड़ा वक़्त चाहिए।”

सुनील ने बहुत ही भावुकता से कहा -“मैं जिंदगी भर तुम्हरा इंतजार करुँगा। तुम जब चाहो, तब मेरे जीवन में आ सकती हो। तुम्हारी जगह कोई और नही ले सकता। वह शुरू से केवल तुम्हारे लिए है।”[७] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.८६)

'मुझे जवाब देना है' इस कहानी में जब सुशीला जी 'महाराष्ट्र हिंदी परिषद' का पाँचवां अधिवेशन नागपुर में सम्पन्न में गयी थी। तब समापन के दिन एक भाई साहब से भेट हुई। समापन समारोह के बाद भाई साहब के साथ बातचीत हुई। उन्होंने पूछा –"और अभी क्या चल रहा है?"

"जी सब ठीक चल रहा है, भाई साहब।" मैंने संकोच से था कहा।

"आजकल कुछ लिख रही है या नहीं।" भाई साहब ने पूछा।

"जी हाँ, लिखा है। कुछ पत्रिकाओं में भेजा है। छपने के बाद आपको अवश्य दिखाऊंगी।"[८] (डॉ सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.६१)

२.२ आत्मकथात्मक शैली

लेखिका ने अपनी कहानियों में आत्मकथात्मक शैली प्रयोग किया है। कहानियों में किए गए 'मैं' शैली का प्रयोग ही आत्मकथात्मक शैली कही जाती है। सुशीला जी ने अपने कहानियों में 'मैं' शैली अर्थात आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया है।

'मेरा बचपन' इस कहानी में लेखिका ने अपने बचपन के बारे में बताया है। मेरा जन्म घर पर हुआ था। मुझे रोते देखकर हँसे थे। गाँव में पंडितों द्वारा नाम रखने की परम्परा थी तो एक पंडित ने मेरा नाम गोदावरी रखा और दूसरे पंडित ने रेणुका। पिताजी ने नाम पसंद न आने के कारण उन्होंने 'सुशीला' नाम रख दिया था।[९](डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ. स.१३)

जब मैं स्कूल जाने लगी तब कक्षा में ब्रह्मण, बानियों के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था और पिछड़े जाति के बच्चों को पीछे बैठाया जाता था। एक दिन मैं कक्षा में गुरूजी के टेबल के सामने तीसरी क्रमांक पर बैठ जाती है। गुरूजी उसे सबसे आगे बैठे देखकर गुस्से से कहते है "सुशीला, तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।" फिर उन्होंने पुरे कक्षा को डांटकर कहा - "जिसको जिस जगह पर बैठने के लिए कहा गया है वह अपनी जगह पर बैठेगा। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा।"[१०](डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.१७,२०)

'झरोखे' इस कहनी में मैं जब तीसरी कक्षा में थी तब उनकी कक्षा की शिक्षिका शांति कश्यप बहनजी सभी बच्चों में लेखिका को होशियार और समझदार मानती थी। सभी विषयों में प्रश्नों के उत्तर लेखिका को याद होते थे और यह देख, खुश होकर बहनजी ने लेखिका को कक्षा की विधार्थी प्रमुख बना दिया था।[११] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.२१)

'मेरा समाज' इस कहनी में जब मैं अपने माँ पिताजी के साथ समाज के लोगों के कार्यक्रमों में जाती थी। कभी किसी की शादी ब्याह में, कभी किसी के जन्म दिन समारोह में, कभी तीजा, तेरहवीं में कभी बरसो में लेखिका अक्सर जाती थी। मुझे शराब पीने वाले लोग कभी अच्छे नहीं लगते थे। आपस में झगड़ने वालों को देख लेखिका को भय लगता था और गुस्सा भी आता था।[१२] (डॉ सुशीला टाकभौरे, पृ.स.३०)

'विचारभूमि' इस कहनी जब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ रही थी तब छोटे भाई मोहन ने कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा था। व्रत रखने के कारण उनकी हालत खराब होने लगी थी। उपवास का

फलाहार लेने के बाद भी वह बार - बार खाने के लिए तड़प रहा था। उस वर्ष की आयु में मैंने ने ‘ व्रत और व्रती ’ कहानी लिखी थी।[१३] (डॉ. सुशीला टाकभौरे - टूटता वहम, पृ.स.३५)

२.३ पूर्व दीप्ति शैली

इसे ‘फ़्लैशबैक टेक्निक अथवा ‘प्रत्यग्दर्शन भी कहा जाता है। इसमें बीती हुई बातों को पुनः अवलोकित किया जाता है। इस शैली का संबंध पात्रों की मानसिक स्थिति से अधिक होता है।

‘सिलिया’ कहानी में सिलिया अतीत की बातें सोचने लगती है “माँ की बातों को सुन सिलिया के मन में आत्मविश्वास जाग उठा था। सिलिया को वह दिन आज भी याद है, जब बारह साल की सिलिया डरी सहमी एक कोने में खड़ी थी, मामी अपनी बेटी मालती को बाल पकड़कर मार रही थी, साथ ही जोर-जोर से चिल्लाकर कह रही थी “क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएं से पानी भर सके हैं? क्यों चढ़ी तू कूएँ पर ? क्यों रस्सी बाल्टी को हाथ लगाई ?” और वाक्य पूरा होने के साथ ही दो चार झापड़ घूसे और बरस पड़ते मालती पर। बेचारी मालती दोनों बांहों में अपना मुंह छुपाए चीख-चीख कर रो रही थी, साथ ही कह रही थी “ओ बाई, माफ कर दे, अब ऐसा कभी नहीं करूंगी...[१४] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.५६)

२.४ डॉट शैली (...)बिंदू

'मेरा बचपन' कहनी में मोहन और कमल स्कूल नहीं जाना जाते थे लेकिन माँ और नानी स्कूल में खींचकर, घसीटते हुए स्कूल ले जाती थी। हर दिन रोते वह यही बहाने करता –

"अरी बाई, मेरा पेट दुख रहा है री... ओ माँ मेरा हाथ टूट गया रे... मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगा, कल से जाऊँगा। आज मत जाने दो रे..."[१५] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.१८)

'सिलिया' इस कहानी में सिलिया की मामी की बेटी मालती जब गाडरी मुहल्ला के कुएँ से पानी निकालकर पीती है। वह बकरी वाली चिल्ला रही थी - "अरी बाई, दौड़ो री, जा मोड़ी को समझाओ। देखो तो मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है, हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने...." और मामी को डांटते हुए उसने कितनी बातें सुनाई थीं-"क्यों बाई, जई सिखाओ हो तुम अपने बच्चों को? एक दिन हमारे मूंड पर मूतने की कह देना...। तुम्हारे नजदीक रहते हैं तो क्या हमारा-धरम करम नहीं है?... का मरजी है तुम्हारी? साफ साफ कह दो..."[१६] (डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, पृ.स.५७)

प्रश्नात्मक शैली

सिलिया जब हेमलता के बहन के घर जाती है तब हेमलता के बहन को उनकी जाति के बारे में पता चलने पर उसे पानी न देकर अंदर जाती है। तब सिलिया को यह प्रश्न साल रहा था कि पानी मांगने पर क्या वह देने से इंकार कर देती?[१७] (डॉ. सुशीला टाकभौरे -टूटता वहम, पृ. स.५८

संदर्भ

१.डॉ. सुशीला टाकभौरे – टूटता वहम, प्रकाशन अनिरुद्ध बुक्स १९, टैगोर, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली -110033, संस्करण -2012, पृ.स.१८

२. वही- पृ.स.५६

३. वही-पृ.स.५७

४. वही- पृ.स.६८

५. वही- पृ.स.५९

६. वही- पृ.स.१६

७. वही- पृ.स.८६

८. वही- पृ.स.६१

९. वही- पृ.स.१३

१०. वही- पृ.स.१७, २०

११. वही- पृ.स.२१

१२. वही- स.पृ.३०

१३. वही- पृ.स.३५

१४. वही- पृ.स.५६

१५. वही- पृ.स.१८

१६. वही- पृ.स.५७

१७. वही- पृ.स.५८

उपसंहार

हिंदी दलित साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महिला साहित्यकारों में से एक डॉ. सुशीला टाकभौरे ने अपनी कहानियों के मध्यम से दलितों की सामजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षिक चित्रण के साथ-साथ सवर्णों के प्रति अपने विद्रोह को स्पष्ट किया है। उनकी ज्यादातर कहानियाँ अंबेडकरी विचारों पर आधारित हैं। उनकी कहानियों में शोषकों से ही नहीं बल्कि अन्याय के ख़िलाफ़ आत्मकथात्मक एवं मनोविश्लेषणात्मक हैं। डॉ. सुशीला जी ने अपनी कहानियों में अपने विचार, जीवन की घटनाएँ तथा अनुभवों को प्रस्तुत किया है। दलित नारी मन के अंतद्वंद्व का चित्रण भी इन कहानियों का प्रमुख विषय रहा है। उनकी कहानियों में समाज में व्याप्त जतिभेद, शोषित, सामाजिक असमानता, सवर्ण-अवर्ण तथा छुआ-छूत की भावना और दलित समुदाय के पीडित व्यक्ति द्वारा भोगे हुए अनुभवों का कथन हैं।

हिंदी दलित साहित्य में सुशीला जी ने कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा ऐसे अनेक विधाएं लिखी है। मैंने आपने लखु शोध प्रबंध कार्य उनकी 'टूटता वहम' इस कहानी संग्रह को चुना है। मेरा लखु शोध प्रबंध का विषय 'डॉ. सुशीला टाकभौरे की कहानियों में दलित विमर्श है'। 'टूटता वहम' यह एक कहानी संग्रह लेकर मैंने अपना लखु शोध प्रबंध किया है। सुशीला जी ने इस कहनी संग्रह में आपने जीवन में भोगा हुआ यथार्थ का चित्रण किया है। सवर्णो द्वारा दलितों पर शोषण, अत्याचार होता आ रहा है यह भी दिखाई देता है।

इस लखु शोध के प्रथम अध्याय में डॉ. सुशीला जी का व्यक्तित्व और कृतित्व पर दृष्टि डाली है। उनका जन्म तथा बचपन, शिक्षा, सम्मान और पुरस्कार, उनकी कहानी संग्रह, काव्य संग्रह, नाटक, उपन्यास, आत्मकथा विवरण, यात्राएं आदि विधाओं पर भी दृष्टि डाली है।

द्वितीय अध्याय में दलित विमर्श :अवधारणा एवं स्वरुप इस पर चर्चा किया है । दलित शब्द का अर्थ - जिसका शोषण हुआ, दबाया गया हो, अपमानित, उत्पीड़न, घृणित, अछूत, अस्पृश्य आदि। 'दलित ' शब्द का शब्दिक अर्थ उत्पीड़ित या टुटा हुआ है । दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कई विद्वानो ने आपने मत के अनुसार परिभाषाएँ दी गई है।

तृतीय अध्याय में डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों का विश्लेषण किया है। उनकी सभी कहानियों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। उनकी कहानियां यथार्थ से जुड़ी कहानियाँ है। कहानियों में ज्यादातर जातिगत भेदभाव, नारी शोषण, छुआ छूत की समस्या दिखाई देता है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ. सुशीला टाकभौरे के कहानियों में अभिव्यक्त दलित विमर्श प्रकाश डाला है। सुशीला जी के कहानियों में कई सारे विमर्शों देखने को मिलते है । सामाजिक भेदभाव, नारी शोषण, जातिगत भेदभाव, शिक्षा के विषय में संघर्ष, स्कूल में निम्न जाति के बच्चों में भेदभाव, शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक, धार्मिक आडम्बरो में विश्वास, अंधविश्वास, आत्मविश्वास की कमी आदि।

पंचम अध्याय सुशीला जी की भाषा शैली पर आधारित है जिसमें मैंने अवलोकन करने पर पाया की इनकी भाषा प्रवाहमयी, सरल, सुस्पष्ट है। इनकी भाषा देशकाल और वातावरण के अनुरूप है तथा ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से भाषा में सजीवता आ जाती है । वैसे तो दलित साहित्य

की भाषा रसविहीन और अशिष्ट मानी जाती है लेकिन लेखिका की भाषा में अशिष्टता, गाली-गलौच शब्दों का प्रयोग न बराबर है। इनकी भाषा शैली बोधगम्य, सरल और सहज है। जिससे कम पढ़े-लिखे लोग भी पढ़कर आसानी से समझ लेते है। इनकी भाषा में कहावते, मुहावरें और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा के और पात्र के अनुसार किया गया है। लेखिका के लेखन की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि उन्होंने कहीं अपने पात्रों से आंचलिक शब्दों का प्रयोग करते दिखाया है तो कहीं फर्राटेदार अंग्रेजी बोलते हुए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

१. डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, प्रकाशन अनिरुद्ध बुक्स १९, टैगोर, केवल पार्क, आजादपुर दिल्ली -2012

सहायक ग्रंथ

१. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागज, नई दिल्ली – 2001

२. प्रा. मोहम्मदरफी हंचिनाल, हिंदी की चर्चित दलित कहानियाँ एक मूल्यांकन, रोली प्रकाशन सी -449, गुजैनी, कानपुर, संस्करण – प्रथम 2015

३. डॉ. सोनिया माला, हिंदी दलित कहानियों के स्वर, नमन प्रकाशन नई दिल्ली -110002, पहला संस्करण -2017

४. रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण – 2003 ई.

५. दलित – विमर्श और साहित्य, दीपक कुमार पाण्डेय, प्रो. प्रणय कृष्ण, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2017

६. भारत में दलित संघर्ष एवं सामाजिक न्याय, एन. के. सिंह, प्रिज्म बुक्स जयपुर प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2012

७. दलित साहित्य के आधार तत्व, हरपालसिंह ‘अरुष’, भारतीय पुस्तक परिषद नई दिल्ली, संस्करण – प्रथम -2011

८. डॉ. सुनील जाधव, हिंदी साहित्य दलित विमर्श, चन्द्रलोक प्रकाशन, शिवराम कृपा मयूर पार्क बसन्त बिहार, कानपुर – 2014

९. डॉ. आरती झाका, भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना, लेख नव विकाव -2012

१०. हिंदी की चर्चित दलित कहानियाँ – एक मूल्यांकन, प्रा. मोहम्मदरफी हंचिनाल, रोली प्रकाशन, संस्करण प्रथम – 2015

११. दलित चेतना के संदर्भ में कथाकर ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. जोगिंद्र कुमार संधू, प्रकाशन – साहित्य संस्थान संस्करण -2012

१२. दलित साहित्य और प्रेमचंद, डॉ. मारुती शिंदे, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन एवं पुस्तक विक्रेता, प्रथम 14 अप्रैल 2016

१३. https://ir.unishivaji.ac.in

१४. https://www.kaavpublications.org

१५. https://www.Raijmr.com

AATMANIRBHAR BHARAT
SWAYAMPURNA GOA

गोंय विद्यापीठ
ताळगांव पठार,
गोंय – ४०३ २०६
फोन : +९१-८६६९६०९०४८

(Accredited by NAAC)

Goa University
Taleigao Plateau, Goa-403 206
Tel : +91-8669609048
Email : registrar@unigoa.ac.in
Website : www.unigoa.ac.in

Date: 9/05/2024

Ref. No.: GU/LIB/ATTENDANCE CERT./2024/264

TO WHOM SO EVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Miss Akshata Govind Gaonkar , a student of Goa University, M.A. (Hindi), visited the Goa University Library for her reference work on the following dates and completed 41 Hours &45 Minutes of research internship as a part of her M.A. dissertation.

The detailed dates and times she visited are attached herewith.

This certificate has been issued at the written request ofProfessor Dr. Vrushali Mandrekar.

9/5/24

University Librarian
(Dr. Sandesh B. Dessai)

Dr. Sandesh B. Dessai
UNIVERSITY LIBRARIAN
Goa University
Taleigao - Goa.

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

…TS TO THE GOA UNIVERSITY LIBRARY

	DATE	TIME	HOURS
	20/06/2023	1:28-1:55	27 min
2.	22/06/2023	12:05-12:51	46 min
3.	10/07/2023	1:38-2:06	28 min
4.	14/07/2023	1:23-1:36	13 min
5.	18/07/2023	3:50-4:00	10 min
6.	19/07/2023	3:15-3:45	30 min
7.	25/07/2023	4:42-5:10	28 min
8.	26/07/2023	4:15-5:15	1 hours
9.	27/07/2023	3:25-3:55	30 min
10.	31/07/2023	3:17-4:40	23 min
11.	02/08/2023	3:14-4:10	56 min
12.	03/08/2023	2:41-3:25	44 min
13.	16/08/2023	11:30-12:48	1 hour 18 min
14.	18/08/2023	3:40-4:55	1 hour 15 min
15.	25/08/2023	3:15-3:45	30 min
16.	29/08/2023	4:10-4:20	10 min
17.	01/09/2023	2:45-4:40	1 hour 55 min
18.	04/09/2023	4:20-4:22	2 min
19.	05/09/2023	4:20-5:30	1 hour 10 min
20.	11/09/2023	3:20-3:25	5 min
21.	12/09/2023	9:50-9:52	2 min
22.	13/09/2023	11:51-1:27	1 hour 36 min
23.	27/09/2023	3:31-4:45	1 hour 14 min
24.	29/09/2023	2:27-5:48	3 hours 1 min
25.	30/09/2023	1:35-1:36	1 min
26.	04/10/2023	11:20-11:55	35 min
27.	05/10/3023	3:20-5:15	1 hour 55 min
28.	06/10/2023	2:55-3:03	8 min
29.	06/10/2023	3:45-5:10	1 hour 25 min
30.	20/10/2023	2:00-2:05	5 min
31.	13/11/2023	12:23-12:26	4 min

32.	15/11/2023	12:40-12:41	1 min
33.	20/11/2023	12:25-12:30	5 min
34.	11/12/2023	10:47-11:26	38 min
35.	03/01/2024	11:28-11:58	30 min
36.	04/01/2024	11:40-12:25	45 min
37.	10/01/2024	11:10-12:04	54 min
38.	17/01/2024	11:16-11:35	19 min
39.	18/01/2024	11:25-11:28	3 min
40.	02/02/2024	1:02-1:13	15 min
41.	28/02/2024	11:50-12:00	10 min
42.	07/03/2024	2:55-3:00	55 min
43.	13/03/2024	11:25-12-35	1 hour 10 min
44.	28/03/2024	12:08-1:00	52 min
45.	04/04/2024	11:50-12:25	35 min
46.	15/04/2024	10:12-1:25	3 hours 13 min
47.	18/04/2024	10:10-12:45	1 hour 55 min
48.	18/04/2024	2:55-4:05	1 hour 10 min
49.	19/04/2024	10:25-3:34	5 hours 9 min
TOTAL HOURS			**41 hours 45 min**

Signature of the Guide
Dr. Vrushali Mandrekar

Signature of the University Librarian
Dr. Sandesh B. Dessai

Signature of the Student
Miss Akshata Govind Gaonkar